इकाई 3 लौह युग

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
3.2 लौह युगीन भारत में विज्ञान
कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज
नगरीय समाजों का उत्थान
विज्ञान का उदय
चिकित्सा विज्ञान में प्रगति
3.3 लौह युगीन यूनान में विज्ञान
विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में प्रगति
3.4 प्राचीन काल में परमाणु सिद्धांत
3.5 यूरोपीय विज्ञान का पतन
3.6 सारांश
3.7 अंत में कुछ प्रश्न
3.8 उत्तर

3.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में हमने आदि मानव के विचारों और तकनीकों का संक्षेप में अध्ययन किया। हमने उस समय की संस्कृति में विज्ञान के मूल को खोजने की कोशिश की। आपने प्राचीन विश्व में, उस ऐतिहासिक काल में, जो काँस्य युग के नाम से प्रसिद्ध है, विज्ञान के उत्थान और विकास के बारे में भी पढ़ा। अब हम विज्ञान के इतिहास के एक बहुत महत्वपूर्ण युग पर ध्यान देंगे जिसे 'लौह युग' कहते हैं।

ईसा पूर्व पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास हम पाते हैं कि अब सभ्यता कुछ नदी घाटियों तक ही सीमित नहीं रह गयी थी बल्कि एशिया, उत्तर अफ्रीका और यूरोप के खेती योग्य क्षेत्रों तक फैल गयी थी। सभ्यता के प्रसार में एक नयी धातु लौह की खोज और उसके उपयोग से बहुत मदद मिली। इसीलिए यह काल 'लौह युग' के नाम से प्रसिद्ध है। 'लौह युग' में कोई ऐसी सनसनीखेज प्रौद्योगिक प्रगति नहीं हुई, जैसी काँस्य युग में हुई थी। इस सभ्यता के प्रसार के साथ, एक सस्ती और काफ़ी मात्रा में पाई जाने वाली धातु के मिलने से व्यापक परिवर्तन आये जिन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के संबंधों को भी प्रभावित किया।

हम पढ़ चुके हैं कि अर्थव्यवस्था और संस्कृति की अनेक समस्याओं के फलस्वरूप काँस्य युग में नदी घाटी सभ्यताओं का पतन हो रहा था। उनका अंत बर्बर जातियों के लगातार हमलों से शीघ्र हो गया। ये खानाबदोश बर्बर लोग चरवाहे थे, जिन्होंने लोहे को इस्तेमाल करना सीख लिया था। वे बहुत गतिशील थे क्योंकि सवारी के लिए उन्होंने जंगली घोड़ों को पालतू बना लिया था और ज़्यादातर वे अपना भोजन साथ लेकर चलते थे। जो सभ्यताएँ समाप्त हो रही थीं उनको तहस-नहस कर वे अन्य देशों को लूटने और सभ्यताओं को उजाड़ने के लिए आगे बढ़ते जाते थे। इस विनाश-लीला के दौरान जो स्थानीय तकनीकें अच्छी लगती उन्हें वे अपना लेते थे। वे जिन इलाकों को तहस-नहस कर देते थे, उनका दुबारा निर्माण करना बर्बाद हुए लोगों के लिए संभव नहीं था। ये बर्बर लोग संसार भर में दूर-दूर तक फैल गये। उन्होंने जिन सभ्यताओं को जन्म दिया दे कम शांतिपूर्ण थीं और कम प्रगतिशील भी पर वे बदलावों के प्रति अधिक लचीली थीं।

इस इकाई में हम 'लौह युग' की भारतीय और यूनानी सभ्यताओं में विज्ञान और तकनीकी की प्रगति के बारे में पढ़ेंगे। अगली इकाई में हम भारत में वैज्ञानिक प्रगति के एक सबसे अधिक सफल काल, जिसके दौरान खगोल-विज्ञान, गणित और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में अत्यधिक प्रगति हुई थी, पर विचार करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- लौह युग के दौरान भारत और यूनान में विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्रों में हुई प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन कर सकेंगे;

- भारत में विभिन्न वैज्ञानिक विचारधाराओं और तकनीकों में हुई प्रगति की यूनान की प्रगति से तुलना कर सकेंगे; और
- यूरोप में विज्ञान के पतन के लिए जिम्मेदार कारकों को समझ सकेंगे।

3.2 लौह युगीन भारत में विज्ञान

भारतीय उपमहाद्वीप में आने वाले खानाबदोश आर्य, उन घास के मैदानों से आये थे, जो आजकल सोवियत, मध्य एशिया और ईरान के हिस्सों में स्थित हैं। वे पहली बार ईसा से लगभग 1500 वर्ष पूर्व आये थे। वे दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ते गये और पंजाब में पशु चराने वाले कृषक समुदायों और राज्यों के रूप में बस गये (चित्र 3.1)। पशु चराने वाले खानाबदोश समुदाय से वे स्थायी रूप से रहने वाले कृषक समुदाय में बदल गये। यह बदलाव मुख्य रूप से ईसा पूर्व 1500 से 1000 वर्ष के बीच में हुआ किंतु वह 700-600 वर्ष ईसा पूर्व तक चलता रहा।

इस युग के बारे में हमें वैदिक काल के साहित्य जैसे वेद, संहिता, उपनिषद, सूत्र आदि से जानकारी मिलती है। आइए, अब हम उस काल के इतिहास की एक बार फिर कल्पना करें।

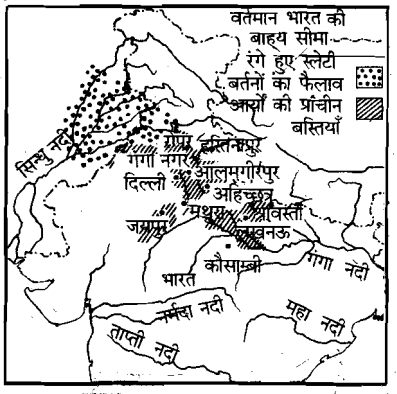

चित्र 3.1 गंगा के मैदानी भागों से प्राप्त रंगे हुए स्लेटी बर्तनों का फैलाव जो आर्यों के पूर्व की ओर बढ़ने का प्रमाण है।

3.2.1 कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज

आर्यों के लिए खानाबदोश चरवाहों से किसानों में बदल जाने का काल स्थानीय निवासियों के साथ युद्ध और कलह का काल था। हमेशा ही वे खेती योग्य भूमि, खनिज और अयस्क भंडारों की खोज में रहते थे। इसके लिए उन्होंने घने जंगलों को भी साफ़ कर डाला। इस काल को ऋग्वैदिक काल कहते हैं।

ऋग्वैदिक काल (1500-700 वर्ष ईसा पूर्व)

ऋग्वैदिक काल में आर्य लोग हमेशा घूमते रहते थे और आपस में या स्थानीय लोगों से जो आर्य नहीं होते थे, संघर्ष करते रहते थे। इसलिए उन्हें विज्ञान और प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने का समय नहीं मिला। उनकी प्रौद्योगिकी मुख्यत: रथों, लोहे के औज़ारों और युद्ध के सामान बनाने तक ही सीमित थी। गंगा के कछार में उस काल (1000 से 600 वर्ष ईसा पूर्व) के मिले मिट्टी के बर्तनों को 'रंगे हुए सलेटी बर्तन' कहा जाता है। पर वे उतने विकसित नहीं थे जितने कि हड़प्पा काल के बर्तन थे। यह आप चित्र 3.2 में देख सकते हैं। इसी प्रकार उस समय ईंट बनाने की तकनीकों में भी हड़प्पा काल की प्रौद्योगिकी के मुकाबले में कोई विशेष अंतर नहीं था। काष्ठ कारीगर, रथ बनाने वाले, धातुकर्मी, जलयान निर्माता आदि दस्तकार समाज के स्वतंत्र नागरिक थे। बुनाई और कताई का काम स्त्रियाँ ही करती थीं।

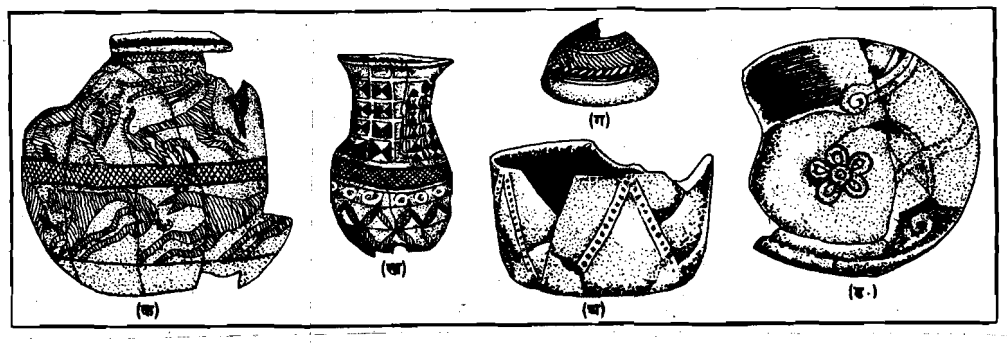

चित्र 3.2 सिन्धु घाटी और रंगे हुए स्लेटी बर्तनों के स्थलों से प्राप्त मिट्टी के बर्तनों का रेखाचित्र। (क) दयामाबाद से प्राप्त लगभग 2,000 वर्ष ई.पू. के मिट्टी के बर्तन, (ख) लोथल से प्राप्त मिट्टी के बर्तन, (ग) नवादातोली से प्राप्त लगभग 2,000 वर्ष ईसा पूर्व का बर्तन। रंगे हुए स्लेटी बर्तन, (घ) कटोरा (पानीपत) और (ङ) तश्तरी (अहिच्छत्र)। इनके नमूने, प्रकार और पकाने के तापमान से यह लगता है कि हड़प्पा के मिट्टी के बर्तन, रंगे हुए स्लेटी बर्तनों की तुलना में बेहतर हैं।

जहाँ तक विज्ञान के अन्य क्षेत्रों का संबंध है, हमें ऋग्वेद में ब्रह्मांड का तीन क्षेत्रों—पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश में बँटे होने का उल्लेख मिलता है। आज हम यह जानते हैं कि यह विभाजन सही नहीं था। यज्ञ तथा समारोह, जो सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की गति पर निर्भर होते थे, को संपन्न करने के लिए ब्राह्मणों को पंचांगों की ज़रूरत होती थी। इसके लिए इन खगोलीय पिण्डों की गतियों का पता लगाया गया। आर्यों ने जो पंचांग बनाये, वे समय को दिनों, महीनों,

वर्षों में बाँटते थे। साथ ही वे ऋतुओं को भी दर्शाते थे। परंतु उस काल में इन ग्रहों, तारों और मंदाकिनियों की गतियों के बारे में गहन अध्ययन नहीं हो पाया था। ऋग्वेद के मंत्रों और छंदों में यदा-कदा ही हमें विभिन्न पौधों, उनके वर्गीकरण और संरचना के बारे में उल्लेख मिलते हैं। कुछ मंत्रों में औषधियों के प्रति रुचि की झलक भी मिलती है।

यजुर्वेदिक काल (700-400 वर्ष ईसा पूर्व)

ऋग्वैदिक काल के बाद का समय कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज में आर्यों के पूर्व की ओर आगे बढ़ने का काल था। यजुर्वेदिक काल के नाम से प्रसिद्ध यह समय लगभग 300 वर्षों तक रहा। यजुर्वेद में बारह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों का उल्लेख है। इस प्रकार के हल कठोर, नयी भूमि की गहरी खुदाई के लिए जरूरी थे। अन्यथा भूमि से अच्छी पैदावार नहीं मिलती थी अथवा भूमि अपनी उपजाऊ शक्ति को कायम नहीं रख सकती थी। इस प्रकार के हल मजबूत लकड़ी के बनाये जा सकते थे, उन्हें कांसे के औजारों से तराशा जा सकता था। परन्तु कठोर धरती को जोतने के लिए लोहे का फाल बनाया जाना ज़रूरी हो गया था। परंतु प्रश्न यह था कि लोहा आए कहाँ से? राजस्थान में तांबा तो मिल सकता था परंतु लौह अयस्क तो दूर पूर्व में मिलते थे। भारत में लोहे और तांबे के अयस्कों की सर्वोत्तम जमावटें, गंगा के कछार की पूर्वी सीमा पर (वर्तमान दक्षिण-पूर्व बिहार) में पायी जाती है। धातु अयस्कों के लिए आर्यों द्वारा की गयी खोज के सबूत हमें लगभग 1000 वर्ष ईसा पूर्व के तांबे की बर्छियों और अर्द्ध-मानव मूर्तियों के रूप में मिलते हैं (चित्र 3.3)। ये बर्छियाँ और मूर्तियाँ पूरे गंगा के कछार में पायी गयी हैं। इस प्रकार मिले औज़ारों और कलात्मक वस्तुओं से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इन्हें आर्य व्यापारी ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। इन वस्तुओं से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्यों को बढ़िया भट्ठों में नियंत्रित अग्नि द्वारा ताम्र को शोधने की तकनीक ज्ञात थी।

यजुर्वेद के मंत्र भूमि और अन्य संसाधनों की जिज्ञासा को दर्शाते हैं : "मुझे दें; मोटा अनाज, भोजन, भूख से छुटकारा, चावल, जौ, तिल, मोठ, मटर, गेहूँ, मसूर, जवार... और जंगली धान। (यज्ञों से फूलूँ-फलूँ); मुझे दें; पत्थर, मिट्टी, पर्वत... सोना, काँसा, शीशा, रांगा, लोहा, ताँबा, आग... जुतने वाली और न जुतने वाली जमीन पर होने वाली सभी वस्तुएँ, पालतू और जंगली मवेशी, यज्ञ से फूलें-फले।"

आर्यों के नौकाचालन के ज्ञान से उनकी गतिशीलता के बारे में पता चलता है। हमें ऋग्वेद में भी सौ पतवारों वाली नौका का उल्लेख मिलता है। व्यापार और नये क्षेत्रों की खोज के लिए नौकाओं को गंगा नदी में वाराणसी से आगे पाटलीपुत्र और गंगा के डेल्टा तक भेजा जाता था।

समय के साथ बढ़िया किस्म के लोहे की माँग बहुत तेज़ी से बढ़ी। परिणामस्वरूप आर्यों ने देश भर में लोहे की नयी जमावटों की खोज आरंभ कर दी। इस खोज में वे लगभग 200 से 100 वर्ष ईसा पूर्व तक उन इलाकों में भी जा पहुँचे जो वर्तमान आंध्र और कर्नाटक में हैं। लोहे, तांबे, चांदी और राँगे के धातुकर्म के अपने ज्ञान में आर्य मौर्य युग के मध्य तक वृद्धि करते रहे। हमें 'अर्थशास्त्र' में अयस्कों को अपचयित करने और गलाने के ऐसे निर्देश मिलते हैं जिनके अनुसार उन्हें विभिन्न किस्मों में बाँटा जा सकता है।

अर्थशास्त्र एक अति महत्वपूर्ण पुस्तक है जो आज हमारी धरोहर है। उसे चंद्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने 321-300 ई.पू. के आस-पास लिखा था।

3.2.2 नगरीय समाजों का उत्थान

इस काल के ग्रंथों में हमें उस समय की सामाजिक परिस्थितियों की तस्वीर भी मिलती है। उस समय समाज की रचना में बुनियादी परिवर्तन हो रहे थे। समाज कबीलों से नगरीय समाज में बदल रहा था। उस समय जब आर्यों ने पूर्व की ओर बढ़ना शुरू किया तब अतिरिक्त परिश्रम के लिए 'दास' बनाने की प्रथा आरंभ हो चुकी थी। एक अति विकसित पुरोहित वर्ग भी जन्म ले रहा था। यह वर्ग यज्ञ संस्कारों में बड़ा कुशल था जिनमें आर्यों और अनार्यों की परंपराएँ शामिल थीं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो रहा था। दस्तकार और मज़दूर उनका उत्पादन स्थानीय समाज के सीधे उपयोग के लिए न करके दूर इलाकों में बसी आर्य और अनार्य बस्तियों के लिए करते थे। उत्तरपथ और बाद में दक्षिणपथ नाम के व्यापारिक मार्ग बन चुके थे। आप इन मार्गों के चित्र 3.4 में देख सकते हैं। सार्थवाह और वैदेहिक नाम से प्रसिद्ध व्यापारियों ने इन मार्गों द्वारा तक्षशिला से मगध तक आना-जाना शुरू कर दिया था। खुदाई में मिले सिक्कों से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी के अंत तक सिक्कों का काफ़ी प्रचलन हो चुका था।

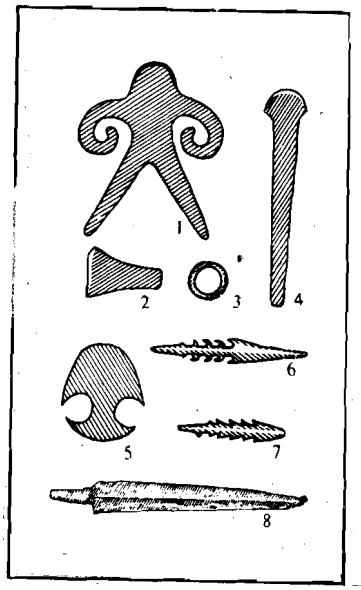

चित्र 3.3 गंगा के मैदानी भागों से प्राप्त ताँबे से बनी कुछ वस्तुओं के रेखाचित्र: (1) अर्ध मानव प्रतिमा, (2) कुल्हाड़ी, (3) चक्र, (4) छैनी, (5) दोहरी कुल्हाड़ी, (6) और (7) काँटदार बर्छी, (8) तलवार।

इस काल के लगभग अंत तक विज्ञान, चिकित्सा और तकनीकी को पूर्णकालिक पेशे के रूप में अपनाने का प्रचलन आरंभ हो गया था। पूरे उत्तरपथ से विद्यार्थी विषय विशेष के प्रशिक्षण के लिए तक्षशिला जैसे विद्या केंद्रों की ओर आने लगे थे। व्याकरणाचार्य पाणिनी चौथी शताब्दी के आसपास तक्षशिला में अध्ययन करते थे।

अत्रेय वहीं छठी शताब्दी में चिकित्सा विज्ञान पढ़ाते थे। अत्रेय के शिष्यों और उत्तराधिकारियों—जीवक, कुमारभट्ट, भेला, पाराशर और अन्य लोगों ने ही भारत में अगले 1000 वर्षों तक चिकित्साविज्ञान में विकास को अत्यधिक योगदान दिया।

लगभग 800 से 600 वर्ष ईसा पूर्व के बीच एक नयी व्यवस्थित सामाजिक परंपरा ने जन्म लिया। यह वैदिक समाज की कमियों और न समाप्त होने वाले संघर्षों से मुक्त थी। छोटे-छोटे राज्य या जनपद बनने लगे। इन पर राजा राज्य करते थे और इनका शासन इन राजाओं द्वारा बनाये गये कानूनों और रीति-रिवाज़ों के अनुसार चलता था। ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में ऐसे सोलह जनपद थे

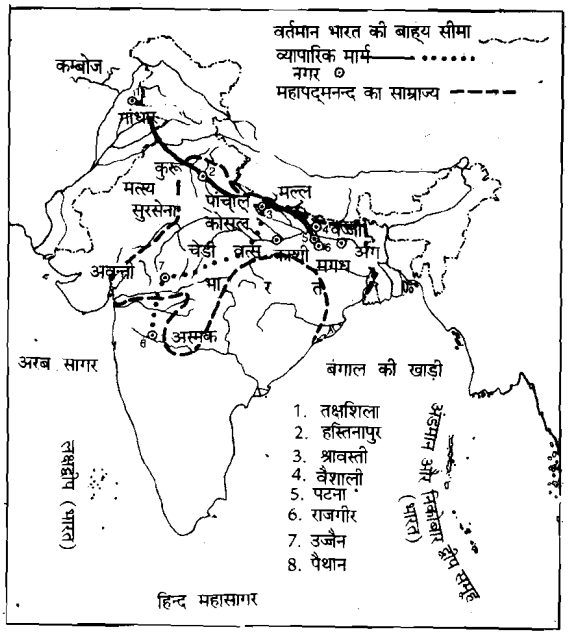

चित्र 3.4 ईसा पूर्व सातवीं सदी के सोलह मुख्य जनपद। उत्तरपथ (——) और दक्षिणपथ (.....) के व्यापारिक रास्ते। चौथी सदी ई.पू महापद्मनन्द के अधीन मगध साम्राज्य।

(चित्र 3.4)। इन राज्यों की आय के स्रोत कृषि और व्यापार थे। इनमें राजा के साथ पुरोहित, विद्वान, सैनिक, व्यापारी, किसान, दस्तकार और निम्न कोटि के मज़दूर होते थे। राजकाज को सुचारू रूप से चलाने और यह निश्चित करने के लिए कि शक्ति हमेशा धनवानों के हाथ ही में रहे, पुरोहितों द्वारा चलायी गयी यह सामाजिक परंपरा जल्दी ही सुदृढ़ हो गयी। समाज चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—में बँट गया। इस परंपरा की रक्षा के लिए यह बात फैलायी गयी कि यह ईश्वरीय व्यवस्था है। इसके भंग करने वाले पर दैवीय प्रकोप होगा।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथन भारत के काँस्य युगीन और लौह युगीन समाजों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। प्रत्येक कथन के आगे यदि वह काँस्य युग से संबंधित है तो 'क' और यदि लौह युग से संबंधित है तो 'ल' लिखिए।

i) यह सभ्यता भारत में गंगा के मैदानों में दूर-दूर तक फैली थी। .....

ii) इस काल की अधिकांश आबादियाँ सिंधु नदी की घाटी में स्थित थीं। .....

iii) इस सभ्यता काल में व्यापार मुख्य रूप से विनिमय पद्धति से होता था यानी एक किस्म की वस्तु को खरीदते समय दूसरे किस्म की वस्तुएँ दी जाती थीं। .....

iv) वस्तुओं का व्यावसायिक तौर पर उत्पादन आरंभ हो गया था। दूसरे शब्दों में कुछ वस्तुएँ स्थानीय खपत के लिए नहीं वरन् दूर-दराज़ के क्षेत्रों में बेचने के लिए बनायी जाती थीं। .....

v) इस समाज में जाति प्रथा का जन्म हुआ। .....

vi) मुख्य रूप से उन वस्तुओं का व्यापार किया जाता था जो समाज में खपत के बाद बच जाती थीं। .....

vii) नयी चीज़ों की खोज में लोग बड़ी संख्या में लगे थे। .....

viii) व्यापारिक लेन-देन के लिए सिक्कों का नियमित रूप से उपयोग होने लगा था। .....

ix) समाज के दो प्रमुख वर्ग थे—पुरोहित-राजा; किसान और नगरीय दस्तकार। .....

x) लोगों के छोटे समूह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विशिष्ट क्षेत्रों में पारंगत होने लगे थे। .....

3.2.3 विज्ञान का उदय

पिछले खंड में हमने आपके समक्ष लौह युग में भारतीय समाज के गठन की झांकी प्रस्तुत की थी। नगरीय समाजों के उदय के साथ विज्ञान और तकनीकी में तीव्र विकास के द्वार खुल गये। अब हम संक्षेप में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे खगोलविज्ञान, गणित, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान और प्राणिविज्ञान में हुई प्रगति का वर्णन करेंगे।

खगोलविज्ञान और गणित

हम ऋग्वैदिक काल में खगोलविज्ञान के बारे में उपलब्ध ज्ञान के स्तर का वर्णन पहले कर चुके हैं। बाद में, इस युग में खगोलविज्ञान के क्षेत्र में हुआ ज़्यादातर कार्य ऋग्वेद में वर्णित ज्ञान का ही विस्तार था क्योंकि इस युग में खगोलविज्ञान का विकास मुख्य रूप से यज्ञ समारोहों से उत्पन्न ज्योतिषीय परंपराओं से हुआ था। वास्तव में इस युग के अंतिम वर्षों में खगोलविज्ञान पथभ्रष्ट होकर फलित ज्योतिष बन गया था।

शुल्वसूत्रों के बारे में, जिनका वर्णन खंड 2.3.3 में किया गया है, आप पहले से जानते हैं। उनमें ज्यामिति का काफ़ी उच्च स्तरीय ज्ञान लक्षित होता है। वैसे अंकगणित भी, इस युग में उतना ही विकसित हो चुका था। लोगों को 10 के गुणनों की संख्याओं का ज्ञान 10^{12} (दस खरब) तक था और वे इन संख्याओं का उपयोग भी करते थे। उन्हें संख्याओं की सब संक्रियाएँ भी ज्ञात थीं। शुल्वसूत्रों में जोड़, घटा, गुणा, भाग और भिन्न का वर्ग निकालने के अनेक उदाहरण दिये गये हैं। उनमें द्विघाती समीकरणों, अपरिमेय समीकरणों और क्रमचय का भी उल्लेख है।

रसायनशास्त्र

नये व्यवस्थित समाज में रसायनशास्त्र के ज्ञान और उपयोग की झलक विभिन्न स्थानों पर मिले मिट्टी के बर्तनों, लोहे के औज़ारों और काँच की वस्तुओं से मिलती हैं। आप चित्र 3.5 में जिन लौह औज़ारो को देख रहे हैं वे लोहा गलाने के अत्यधिक विकसित ज्ञान के प्रतीक हैं। भारतीय धातुकर्मियों ने ईसा पूर्व पाँचवीं या चौथी शताब्दी तक लोहा और इस्पात बनाने की तकनीक में उच्चकोटि की कुशलता हासिल कर ली थी। 30 से अधिक स्थानों पर की गयी खुदाई में मिली काँच की वस्तुएँ भी यह संकेत करती हैं कि काँच के निर्माण का ज्ञान इस युग के अंतिम चरण में ही हुआ था (चित्र 3.6)। इन स्थानों से ईसा पूर्व छठी शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक की कांच की

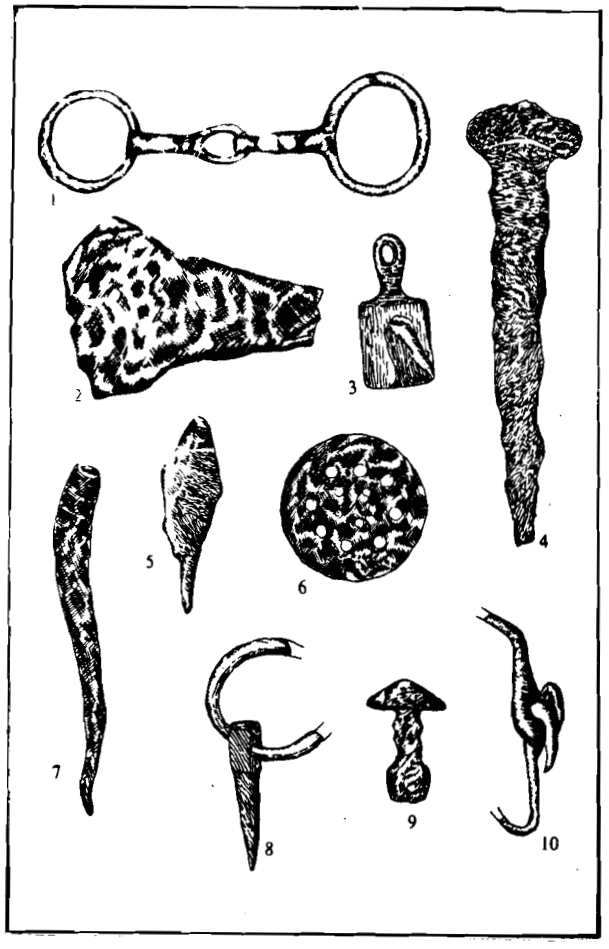

चित्र 3.5 विभिन्न स्थानों जैसे तक्षशिला, हस्तिनापुर, उज्जैन और शिशुपालगढ़ से प्राप्त कुछ प्राचीन लौह वस्तुओं के रेखाचित्र : 1) कड़ीदार ज़ंजीर, 2) लोहे की कुल्हाड़ी का निचला हिस्सा, 3) छोटी सी घंटी, 4) छल्लेनुमा सिरे का हिस्सा, 5) भाले का सिरा, 6) लोहे का छेद वाला उत्तल चक्र, 7) वर्गाकार टुकड़े की नोकें, 8) दरवाज़े का कड़ा, 9) लोहे का गोलाकार टुकड़ा जिसमें कील लगी हुई है, 10) ज़ंजीर का एक टुकड़ा।

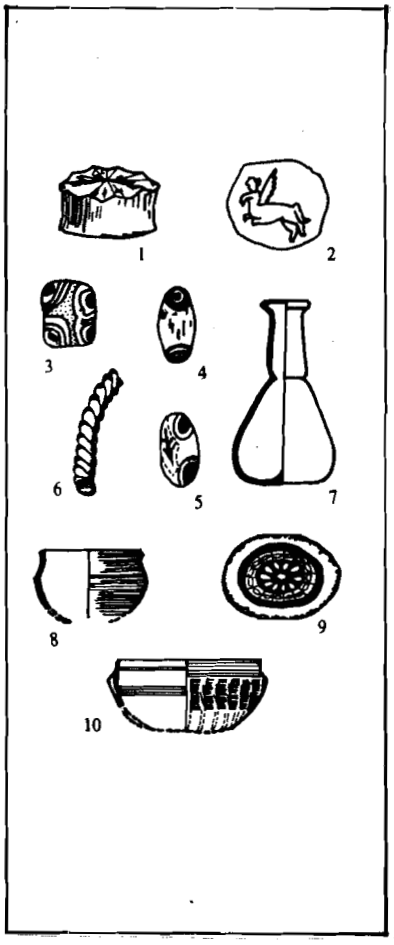

चित्र 3.6 निम्नलिखित स्थानों से प्राप्त कुछ प्राचीन शीशे के नमूनों के रेखाचित्र। (क) तक्षशिला (छठी सदी ईसा पूर्व से पहली सदी ईसवी तक), 1) चर्खी, 2) मुहर, 3-5) मनके, 6) चूड़ी का टुकड़ा, 7) शराब का पात्र (पाये गये टुकड़े को मोटी रेखा से दर्शाया गया है)। (ख)अरिकामेदु (पहली सदी से दूसरी सदी तक), 8-10) रोम का काँच का कटोरा, 9) मिलिफिओरी काँच।

कटोरियाँ, तश्तरियाँ, ढक्कन और हाँडियाँ मिली हैं। इस युग में लोगों को किण्वन (fermentation) के तरीके, रंगाई तकनीकें, अनेक रसायनों और रंगीन द्रवों के निर्माण और उपयोग की विधियाँ भी भली-भाँति ज्ञात थीं।

वनस्पतिविज्ञान

काँस्य और लौह युगों में संसार भर में कृषि मनुष्य का प्रमुख व्यवसाय बन चुकी थी। इसलिए यह विचित्र बात नहीं है कि कृषि में प्रगति होने के साथ-साथ भारत में वनस्पतिविज्ञान और प्राथमिक पादक क्रियाविज्ञान (plant physiology) में भी प्रगति हुई। चिकित्साविज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति भी इन विज्ञानों के विकास में सहायक हुई। उदाहरण के तौर पर ऋग्वैदिक मंत्रों में, अथर्ववेद, तैत्रिय संहिता आदि में निम्नलिखित विषयों पर यदा-कदा उल्लेख मिलते हैं।

i) पौधे के विभिन्न अंग जैसे मूल, तना, कंद, वल्स आदि।

ii) आकृति विज्ञान (morphology) और उपयोग के अनुसार पौधों का वर्गीकरण, जैसे औषधि पौधे, वल्ली, गुच्छ आदि।

iii) पौधों को मिट्टी के अलावा पोषण प्रदान करने वाले पदार्थों जैसे गोबर आदि के अनुसार पौधों का क्रियाविज्ञान।

परन्तु वनस्पतिशास्त्र पर व्यवस्थित अध्ययन पाराशर के बृहत् ग्रंथ 'वृक्षायुर्वेद' में हुआ जिसकी रचना लगभग पहली शताब्दी ईसा पूर्व में ही हुई थी। इस ग्रंथ में वनस्पतिशास्त्र और औषधिविज्ञान के क्षेत्र में उस समय तक उपलब्ध ज्ञान को शामिल किया गया था पर हम इस बारे में यहाँ विस्तार में नहीं जाएँगे।

प्राणिविज्ञान

घोड़ों और हाथियों को पालतू बना लिये जाने और युद्धों में उनके उपयोग आरंभ होने से उनकी शारीरिक संरचना और क्रियाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी हो गया था। वैदिक साहित्य का सर्वेक्षण करने से पता चलता है कि उस समय 260 से भी अधिक जातियों के जंतुओं के बारे में जानकारी उपलब्ध थी। उस काल में जन्तुओं के वर्गीकरण और उनके आहारों के बारे में अध्ययन करने के प्रयत्न किये गये थे। मानव शरीर क्रियाशास्त्र का भी अध्ययन किया गया था। वैदिक काल के बाद के साहित्य में जन्तुओं के नामों और उनकी शारीरिक संरचना, शारीरिक क्रियाओं, भोजन आदि के बारे में प्रकृतिविज्ञान का काफी बड़ा भंडार है। हो सकता है कि इन प्रेक्षणों (observations) ने ही बाद में जीव-जंतुओं के वर्गीकरण, आनुवंशिकी, भ्रूणविज्ञान आदि की संकल्पनाओं को प्रभावित किया हो। परंतु खगोलविज्ञान, गणित, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान और प्राणिविज्ञान के क्षेत्रों में हुई प्रगति, चिकित्साविज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति की तुलना में बहुत कम है। हम इस प्रगति के बारे में आपको अगले भाग में बताएँगे।

बोध प्रश्न 2

यह बताइए कि निम्नलिखित कथन, लौह युगीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के बारे में सत्य हैं अथवा असत्य।

क) खगोलविज्ञान, जिसका जन्म ज्योतिष क्रियाकलापों और यज्ञ समारोहों के फलस्वरूप हुआ था, का विकास सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और तारों की गतियों के अध्ययन में और अनेक नये प्रतिमानों (models), नियमों और सिद्धांतों के विकास में प्रतिफलित हुआ। .....

ख) यज्ञवेदियों के निर्माण की आवश्यकता ने ज्यामिति के ज्ञान में काफ़ी वृद्धि की। .....

ग) लौह युग में भारतीय लोग इस्पात बनाना जानते थे। .....

घ) पौधों और जन्तुओं के वर्गीकरण, संरचना और शरीर क्रियाशास्त्र के बारे में उपलब्ध ज्ञान प्रारंभिक रूप में ही था। .....

ङ) वैदिक काल में आधुनिक विज्ञान की पूर्ण प्रगति हो चुकी थी। और हम उस ज्ञान की केवल फिर से खोज कर रहे हैं। .....

3.2.4 चिकित्सा विज्ञान में प्रगति

आरंभिक वैदिक युग में रोगी का उपचार करना पुरोहित का कर्त्तव्य माना जाता था। रोगों को, मनुष्य द्वारा किये गये पापों के लिए भगवान की सज़ा अथवा प्रेतों का प्रकोप माना जाता था। इन विचारों के साथ-साथ हमें वैदिक ग्रंथों में रोगों के उद्गम, औषधियों के उपयोग और शल्य चिकित्सा आदि के बारे में परिकल्पनाएँ भी मिलती हैं। चिकित्सा के ज्ञान की विज्ञान के रूप में आयुर्वेदिक संकल्पना का विकास बाद में हुआ।

चिकित्सा की आर्युवेदिक पद्धति

पुनरवस् अत्रेय (ईसा पूर्व लगभग छठी शताब्दी) तक्षशिला में चिकित्सा विज्ञान पढ़ाते थे। उनके प्रत्येक शिष्य जैसे भेला, जातुकर्ण, हरिता, क्षारपाणी, पाराशर ने औषधिविज्ञान पर ग्रंथों की रचना की थी। पतंजलि ने, जिनका काल ईसा पूर्व लगभग दूसरी शताब्दी माना जाता है, तथा उनके बाद अनेक विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा पद्धति के मुख्य ग्रंथ **चरक संहिता** पर टीकाएँ लिखी थीं। आज **चरक संहिता** के केवल कुछ अंश ही उपलब्ध हैं और उसके बारे में आज हमें जो जानकारी है, वह मुख्यतः इन टीकाओं पर ही आधारित है। समझा जाता है कि **चरक संहिता** और शल्य चिकित्सा के मूल ग्रंथ **सुश्रुत संहिता** की रचना ईसा से 600 वर्ष पूर्व हुई थी। इन ग्रन्थों के लेखकों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि इन ग्रंथों की रचना अकेले व्यक्तियों ने की थी जबकि अन्य लोग यह मानते हैं कि इनके लेखक विशेष समुदायों के समूह के चिकित्सक एवं शल्य चिकित्सक थे। इन ग्रंथों के मुख्य भाग में विभिन्न रोगों के लक्षणों और निदानों की सूची और बहुत ही सुचारू वर्गीकरण, रोगों की उपचार पद्धतियों का वर्णन है तथा औषधियों के गुण और उनके देने के तरीकों और खुराकों आदि का विवरण है। ये ग्रंथ इतने महत्वपूर्ण इसलिए हैं कि :

i) अपने दृष्टिकोण और तकनीकों में वे एकदम वैज्ञानिक हैं,

ii) उनका प्रभाव विज्ञान की अन्य शाखाओं जैसे रसायनशास्त्र तथा वनस्पतिविज्ञान आदि की प्रगति पर भी दिखायी देता है, तथा

iii) वे प्राचीन काल से ही आयुर्वेद के मुख्य स्रोत के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं।

दृष्टिकोण और तकनीक

उक्त ग्रंथों में, चिकित्सकों के लिए बताये गये दृष्टिकोण और विधियों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं :

i) चिकित्सक केवल एक ही बात में रुचि रखता था और वह थी रोगी का उपचार। इसके लिए वह झूठ तक भी बोल सकता था। उदाहरण के तौर पर, यदि रोगी को स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से मांस खिलाना आवश्यक होता था तो चिकित्सक उसकी धार्मिक और नैतिक मान्यताओं को दबाने के लिए कोई भी चालाकी अपना लेता था।

ii) चिकित्सक को अपना ध्यान केवल रोगी के उपचार पर ही केंद्रित रखना होता था। इसलिए उसे किसी भी हालत में रोगी को कोई हानि नहीं पहुँचानी होती थी चाहे इसके लिए स्वय उसे अपने जीवन की बाज़ी लगा देनी पड़ती। चिकित्सक को रोगी से अपने पुत्र की भाँति व्यवहार करना होता था।

iii) चिकित्सा का ज्ञान पूर्व-चिकित्सकों से तथा चिकित्सा-संबंधी वाद-विवाद से प्राप्त किया जाता था।

iv) अनुभव से पैदा हुआ ज्ञान पहली आवश्यकता थी। कहा जाता था कि सब किस्म के लक्षणों में वे ही सबसे अधिक प्रामाणिक होते हैं जो आँख से दिखाई देते हैं। किसी भी जानकार चिकित्सक को केवल तर्क के आधार पर रोगी की परीक्षा करना मना था। चिकित्सक औषधि का प्रभाव सीधे प्रेक्षण द्वारा मालूम करते थे।

निदान और फलानुमान

रोग का निदान तथा फलानुमान प्रत्यक्ष रूप से देखकर, सुनकर, सूंघकर और रोगी के सब अंगों को छूकर तथा अप्रत्यक्ष रूप से नाड़ी की जाँच करके किया जाता था।

इन प्रेक्षणों को अकेले तथा संयुक्त रूप से विशेष रोगों के साथ जोड़कर किया जाता था। इस प्रकार फोड़े में चिकित्सक उसमें से झागदार रक्त के साथ वायु के तेज़ी से निकलने की ध्वनि को सुनता था। इसी प्रकार अंतड़ियों की गुड़गुड़, जोड़ों की चटकने की आवाज और ज़बान में बदलाव तथा अन्य लक्षणों को चिकित्सक देखता था। चिकित्सक अपना निदान प्रत्यक्ष प्रेक्षणों पर ही नहीं वरन् रोगी के घर, जाति, रहन-सहन के तरीके, आहार तथा रोगों के इतिहास के आधार पर करता था। फलानुमान इस सिद्धांत पर आधारित था कि एक होशियार चिकित्सक को असाध्य रोगी का उपचार नहीं करना चाहिए। इसके अनुसार अरिष्टों या अपशकुनों (रोग की प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत) की, जिनसे रोगी की मृत्यु हो जाती थी अधिक जांच की जाती थी।

मूल ग्रंथ के शब्दों में : "चिकित्सा संबंधी वाद-विवाद किसी ऐसे प्रस्ताव की अनुमति नहीं देता जो अप्रासंगिक, अप्रमाणिक, अशोधित हो और जिसकी कोई व्यावहारिक सार्थकता न हो, जो उलझा हुआ हो तथा जिसका कोई सामान्य उपयोग न हो। प्रत्येक प्रस्ताव तर्कों द्वारा प्रमाणित होना चाहिए। केवल वे ही प्रस्ताव चिकित्सा के उद्देश्यों के लिए उपयोगी होते हैं जो तर्कों द्वारा प्रमाणित हों और किसी भी दृष्टिकोण से निष्कलंक हों।

उपचार विधियाँ

सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपचार विधियों को निम्न समूहों में बाँटा गया था—वमन उत्पन्न करना,

चरक संहिता में ज्वर, विषाक्तता, हैजा, कोढ़, बवासीर, गैस, मधुमेह, पीलिया, मोतियाबिंद, सबलबाय, फोड़ा, मलद्वार का नाड़ी-व्रण आदि रोगों के उपचार में रेचकों का उपयोग सूझाया गया है।

रेचक देना (पेट की सफाई के लिए), एनीमा देना, तैलीय एनीमा देना और नासीय चिकित्सा आदि। रोगों के अनुसार इनका उपयोग किया जाता था। चरक और सुश्रुत संहिताओं में इन उपचार विधियों के इस्तेमाल में संभावित दुर्घटनाओं की सूची भी दी गयी है। इनमें रोगों का विस्तृत वर्गीकरण भी दिया गया है।

जंतु-जन्य पदार्थों में चरक संहिता में शहद, दूध, विष्ठा, मूत्र, शुक्राणु, सींग, मांस आदि का उल्लेख है। खनिजों के अंतर्गत सोना, चाँदी ताँबा, जस्ता, अंजन (एंटीमनी) आदि के नाम दिये गये हैं। चरक संहिता में उन रोगों के अनुसार, जिनके उपचार में इनका इस्तेमाल किया जाता था, 700 पादप (जड़ी-बूटियाँ) औषधियों का जिक्र है।

आरोग्यवर्धक (स्वास्थ्य बढ़ाने वाले) पदार्थों को उपचारी और निरोधक औषधियों में बाँटा गया था। चरक के अनुसार ये औषधियाँ जंतु, पादक (जड़ी-बूटियाँ) और खनिज उद्गम के होते थे। औषधियों को एक अन्य पद्धति के अनुसार भी वर्गीकृत किया गया था जैसे—औषधि के प्रभाव के अनुसार—वामक, रेचक आदि। इन वर्गों को, उनके द्वारा होने वाले आरोग्य लाभ के अनुसार पचास समूहों में फिर बाँटा गया था।

शल्य चिकित्सा

शल्य चिकित्सा का प्रमुख ग्रंथ सुश्रुत संहिता है। इसमें रोगों के लक्षणों तथा उनकी चिकित्सा के साथ-साथ मानव शरीरक्रिया शास्त्र, शरीर रचना, विशेष रूप से आंतरिक अंगों की संरचना की काफी विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरण के तौर पर व्रणों या घावों के उपचार के बारे में यह बताया गया है कि उनमें औज़ारों का प्रयोग करते समय नाजुक अंगों जैसे शिराओं, अस्थियों आदि को बचाना चाहिए। संहिता में स्थानीय लोहारों द्वारा बनाये जाने वाले लोहे के औज़ारों की, जो गले-सड़े अंगों को शरीर में से निकालने में प्रयोग किये जाते थे, उनकी धार, आकृति, आकार आदि के संबंध में, विस्तार से चर्चा है (चित्र 3.7, 3.8)। इस संहिता के दो महत्वपूर्ण तथ्य हैं :

i) घावों की चिकित्सा के पहले और बाद में सफ़ाई के बारे में विशेष सतर्कता : इससे संक्रमण के बारे में अनुभव पर आधारित ज्ञान का आभास होता है।

ii) संवेदनाहारी औषधियों का उपयोग : यद्यपि शल्य चिकित्सा से पूर्व रोगी को बहुत मज़बूती से बाँध देने के बारे में, जिससे वह शल्य चिकित्सा के दौरान हिले नहीं, सलाह दी गयी थी, पर यह भी सुझाया गया कि उसे शल्य चिकित्सा से पहले मदिरा पिला देनी चाहिए जिससे वह पीड़ा के कारण बेहोश न हो पाये। साथ ही उसे औज़ार की चुभन भी महसूस न हो।

ये कथन अत्रेय उपनिषद् और बृहद्राण्यक उपनिषद् से लिये गये हैं।

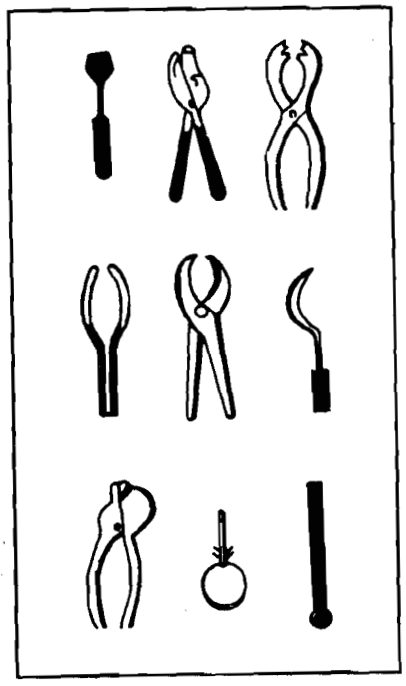

चित्र 3.7 सुश्रुत संहिता में वर्णित सुश्रुत के चीर-फाड़ के औज़ारों का एक कलाकार द्वारा रेखांकन।

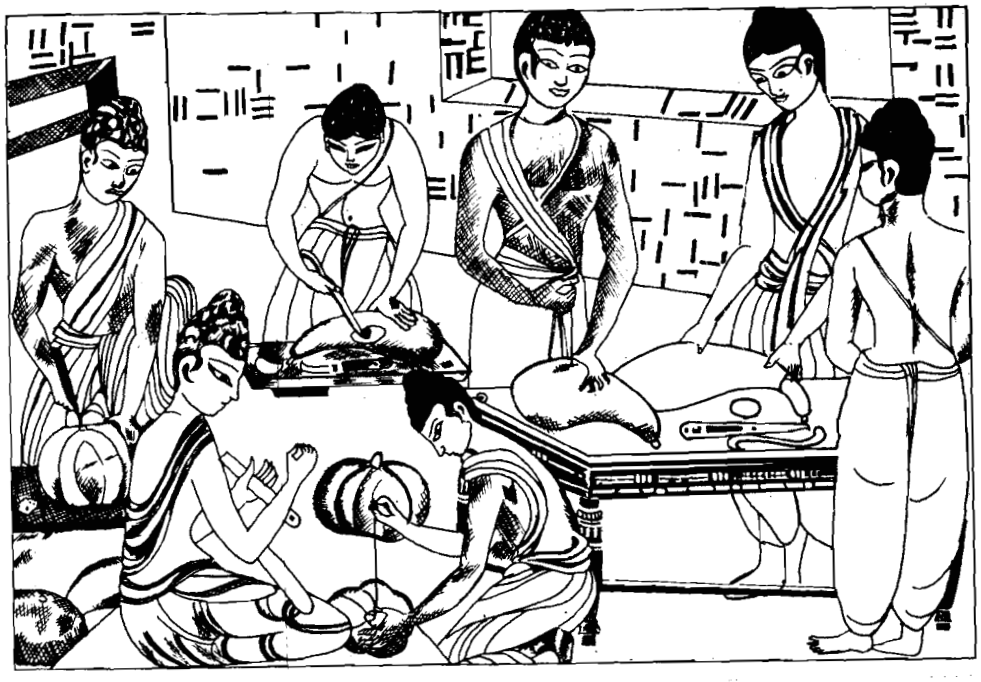

चित्र 3.8 एक कलाकार द्वारा बनाये गये रेखाचित्र में सुश्रुत के विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न सब्जियों जैसे कद्दू (पुष्पफल), लौकी (अलवू) या खीरा (इखारुका) पर चीर-फाड़ का अभ्यास करते हुए। मानव शरीर पर चीर-फाड़ करने से पहले विद्यार्थियों को सब्जियों, पानी से भरे थैलों, मृत जानवरों और पूरे आकार की भरी हुई गुड़िया पर अच्छी तरह से प्रायोगिक अभ्यास कराया जाता था।

इस प्रकार हमें लौह युगीन भारत की चिकित्सा पद्धति में अपनाये गये वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तकनीक का पता चलता है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि चरक और सुश्रुत के शिष्य अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण धर्माधिकारियों के क्रोध का कारण बन गये थे। इसका कारण संभवतः यह था कि वे धर्माधिकारियों के विचारों के विरुद्ध थे। यह धर्माधिकारी प्रायः ऐसे मंत्र

कह कर कि "देवता रहस्य पसंद करते हैं" या "देवताओं को रहस्य पसंद है, वे प्रेक्षण से घृणा करते हैं" अपनी जीविका अर्जित करते थे। भारतीय चिकित्सक अपने व्यवसाय में उच्च और निम्न जातियों में भेद नहीं करते थे। यह भी एक कारण था जिससे पुरोहित वर्ग चरक और सुश्रुत को पसंद नहीं करते थे।

यह कहना सही नहीं होगा कि चिकित्सक उस समय समाज में प्रचलित धारणाओं और अंधविश्वासों के प्रभावों से एकदम मुक्त थे। ब्रह्मांड उत्पत्ति सिद्धांत अर्थात् ब्रह्मांड, पृथ्वी और जीवधारियों के जन्म से संबंधित दर्शनशास्त्र की धारणा की झलक आयुर्वेद में भी मिलती है। उदाहरण के तौर पर, सब बीमारियों के लिए तीन दोषों—वायु, पित्त और कफ़—को उत्तरदायी ठहराना इसी प्रकार का एक प्रभाव था। आरोग्य प्रदान करने वाली वस्तुओं के गुणों को पंचतत्वों (पंचभूत)—पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश से जोड़ देना एक ऐसा ही उदाहरण है। परंतु तत्कालीन दार्शनिक और धार्मिक हठधर्मिता वैद्यों को उन औषधियों को जिन्हें वे आरोग्य लाभ के लिए आवश्यक समझते थे, रोगी को देने में कोई बाधा उपस्थित नहीं करती थी।

आयुर्वेद के अनुसार त्रिदोश—वात, पित्त और कफ़—सभी जीवित प्राणियों में विद्यमान होते हैं। यह माना जाता है कि शरीर में इन दोषों की अधिकता, कमी या असंतुलन के कारण बीमारियाँ पैदा होती हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्न में से कौन से तथ्य चिकित्सा के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत द्वारा अपनाये गये वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विधियों के अपवाद हैं। सही उत्तर के आगे (√) निशान लगाएं।

क) चिकित्सा विज्ञान का ज्ञान पूर्व चिकित्सकों के ज्ञान और वाद-विवाद पर आधारित था।

ख) उपचार की नयी तकनीकों को अपनाने से पूर्व भली-भाँति जाँच की जाती थी और निष्कर्षों को तर्क की कसौटी पर कसा जाता था।

ग) विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग की जाने वाली औषधियों और उपचार विधियों के चयन में प्रक्षेण और प्रयोगों का महत्वपूर्ण योग रहता था।

घ) यह समझा जाता था कि रोग तीन दोषों—वायु, पित्त और कफ़—के कारण होते हैं और उपचार करने वाले पदार्थों को अपने गुण पंचतत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—से प्राप्त होते हैं।

ङ) औषधियों और रोगों के वर्गीकरण किये गये थे।

यह वास्तव में बहुत खेद का विषय है कि चिकित्सा विज्ञान जिसका शुभारंभ इतने सुचारू अनुभवजन्य प्रेक्षण से हुआ था, कभी भी इन प्रेक्षणों के वर्गीकरण के स्तर से आगे नहीं बढ़ पाया। वह कभी भी वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं हो पाया। ज्ञान के इस अपार भंडार के आधार पर कोई भी सामान्य नियम अथवा सिद्धांत नहीं बनाया जा सका। तीसरी या चौथी शताब्दी के बाद तो चिकित्सा विज्ञान खोजपूर्ण प्रेक्षण पद्धति पर कम और 'जादुई' कारनामों पर अधिक आधारित होने लगा। इस प्रकार की गतिहीनता के कारण अनेक थे। इसका एक कारण रूढ़िग्रस्त धार्मिक विचारधारा से मिलने वाला विरोध था।

हमें यह भी पता चलता है कि इस युग में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति पिछले युग से बहुत भिन्न थी। काँस्य युग में जैसे-जैसे लोगों के सामने जीवन संग्राम अथवा श्रेष्ठ जीवन जीने की समस्याएँ सामने आती रहीं वे औज़ार, धातुक्रम, जलयान निर्माण अथवा चिकित्सा संबंधी नयी खोजें करते रहे और तकनीकें विकसित करते रहे। यह एक सार्वभौमिक घटना थी कि उत्पादन में लगे व्यक्ति बड़ी संख्या में कुछ हद तक आविष्कार भी करते थे। परंतु लौह युग में नये आविष्कार करने, प्रेक्षणों के आधार पर सामान्य नियम बनाने, लोगों का उपचार या आगे आने वाली पीढ़ियों तक ज्ञान पहुँचाने का काम राज्य पर आश्रित कुछ ही लोगों तक सीमित रह गया था। पर इस पद्धति के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू थे। सकारात्मक पहलू के रूप में इस पद्धति ने प्रेक्षण और प्रयोग करने या किसी जटिल समस्या का बहुत गहराई से व्यवस्थित अध्ययन करने अथवा दैनिक जीवन के झंझट-झमेलों से मुक्त रहने के अवसर प्रदान किये। दूसरी ओर इस पद्धति ने विद्वानों को व्यावहारिक लोगों से अलग कर दिया। इसने सिद्धांत और प्रयोग के बीच होने वाली अंतःक्रियाओं को कठिन बना दिया। इससे अमूर्त ज्ञान और अंधे अनुकरण की आशंकाएँ बढ़ने लगी। यह भारतीय विज्ञान के लिए भी और यूनानी विज्ञान के लिए भी सत्य है। अब हम लौह युगीन यूनान में विज्ञान की प्रगति का वर्णन करेंगे।

3.3 लौह युगीन यूनान में विज्ञान

लौह युगीन विश्व के इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू था—भारत और यूनान में संस्कृतियों का एक-सा विकास। हम जानते हैं कि इन दोनों देशों में आपस में व्यापार होता था। इन दोनों के बीच जानकारियों का आदान-प्रदान पहले पश्चिम एशिया की मार्फत होता था। बाद में, ईसा पूर्व 327 में उत्तर-पश्चिम भारत पर आक्रमण के फलस्वरूप सीधा होने लगा (चित्र 3.9)। इस प्रकार यह कहना सरल है कि भारतीयों और यूनानी विद्वानों की ब्रह्मांड उत्पत्ति की परिकल्पनाओं ने तथा चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा के ज्ञान ने एक दूसरे को इन संपर्कों के माध्यम से प्रभावित किया हो।

चित्र 3.9 (क) ग्रीक शहरी राज्य

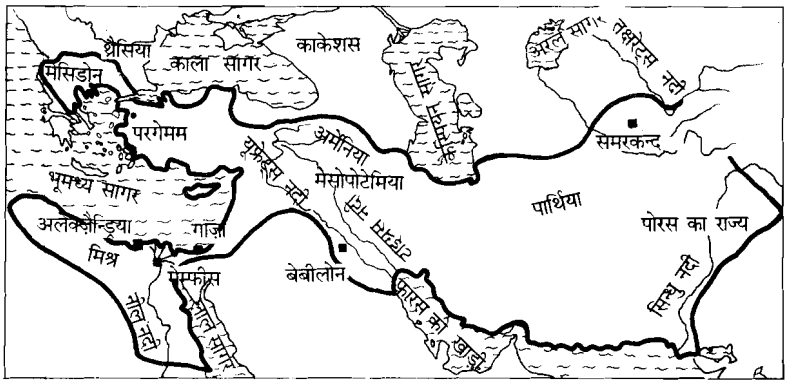

(ख) सिकन्दर का साम्राज्य

भारतीय और यूनानी सभ्यताओं में एक समानता थी—एक ही काल में, एक जैसे ही विभिन्न वर्गों से युक्त समाज का गठन। जब भारत में जाति प्रथा ने परिश्रम वाले सब कार्यों को निम्न जातियों पर थोप दिया था, तब यूनान में परिश्रम के कार्य दास ही करते थे। दस्तकारों और हाथ से काम करने वाले लोगों को मानसिक कार्य करने वालों और विचारकों से निश्चय ही हीन समझा जाता था। यद्यपि मुक्त नागरिक भी हस्त कलाओं के क्षेत्र में काफ़ी कार्य करते थे, पर उन्हें दासों की प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करना पड़ता था। इसलिए उनके कार्यों को भी हीन समझा जाता था। इस विचारधारा ने जैसे कि हम पहले देख चुके हैं, तकनीकी को विचारशील विज्ञान से दूर कर दिया। ऐसा भारत में भी और यूनान में भी हुआ। इसने व्यावहारिक कार्यों पर विचार करने वालों के प्रभाव को और चिंतन पर व्यवहार के प्रभावों को कम कर दिया। शासन द्वारा विचारकों और अध्यापकों को संरक्षण प्रदान करने से उस युग में विज्ञान के विकास को एक विचित्र मोड़ मिला।

आरंभ में इससे यूनान में ज्यामिति, यांत्रिकी, चिकित्सा विज्ञान और ब्रह्मांड की उत्पत्ति जैसे विज्ञान विकसित हुए। पर अंत में उसने यूनानी विज्ञान को बहुत अधिक चिंतनशील और अमूर्त बना दिया। अमूर्त होने से विज्ञान जीवन से एकदम अलग हो गया। अंततः ऐसी प्रणालियाँ विकसित हो गई जिन्हें कोई चुनौती नहीं दे सकता था और फिर वे प्रकृति के 'अटूट नियम' बन गये। ये नियम अगले 2000 वर्षों तक, विज्ञान की प्रगति में मुख्य आधार बने रहे।

भारत में भी अमूर्तता अवश्य आयी और भौतिकी और ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में ही। चिकित्सा विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और कृषि विज्ञान ने प्रेक्षण से अपने मज़बूत संपर्क बनाये रखे। इसके अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान में उपचार के लिए समाज द्वारा बहिष्कृत मांस तथा अन्य पदार्थों का उपयोग ज़रूरी था। उपचार करते समय और रोगी की जान बचाने के लिए चिकित्सक अपने कर्म और अन्य प्राचीन सिद्धांतों की परवाह नहीं करते थे। इससे धार्मिक और न्यायिक अधिकारी उनकी निंदा करने लगे और परिणामस्वरूप तीसरी से चौथी शताब्दी ईस्वी में चिकित्सा विज्ञान में गतिहीनता आ गयी।

यह जानना रोचक होगा कि विज्ञान पर तत्कालीन विचारधारा और धार्मिक प्रणालियों के प्रभावों के बारे में भारतीय और यूनानी विज्ञानों में मूलभूत अंतर थे। इस युग के भारतीय वैज्ञानिक ग्रंथ सदैव ही देवत्व के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने से आरंभ होते थे। परंतु वास्तविक पाठ, ब्रह्मांड की उत्पत्ति से अथवा कुछ हद तक चिकित्सा विज्ञान से (पंचभूतों और त्रिदोषों के बारे में विचार) संबंधित ग्रंथों के अतिरिक्त दार्शनिक प्रेरणा आदि से मुक्त रहते थे। पर यूनानी विज्ञान तत्कालीन

सामाजिक दर्शन और विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था। इस बारे में डेमोक्रिटस और हिप्पोक्रेटिज आदि की रचनाएँ कुछ अपवाद थीं। यूनानी विज्ञान में वह युग जिज्ञासा का युग था। दार्शनिक वैज्ञानिक हमेशा ही कार्य और कारण के बीच संबंध ज्ञात करने के लिए उत्सुक रहते थे। परन्तु प्रायोगिक उपकरणों के अभाव में और तत्कालीन दास प्रथा को मान्यता देने वाले सामाजिक ढाँचे की वजह से वैज्ञानिक अपने हल उस समय की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ही खोजते थे।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आरंभिक यूनानी दार्शनिकों जैसे थेल्स, एंपेडोक्लीज और पाइथागोरस ने देवताओं की मदद के बिना विश्व उत्पत्ति की कल्पना की थी। चार तत्वों—पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि—का सिद्धांत आयोना के इन्हीं अग्रज दर्शनशास्त्रियों की देन माना जाता है। आगे के भागों में हम इसके बारे में विस्तार से बतायेंगे। अरस्तू (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी) एक अग्रज यूनानी दर्शनशास्त्री थे जिन्हें विज्ञान के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है (चित्र 3.10)। उन्होंने आयोना के दर्शनशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित विश्व उत्पत्ति के सिद्धांत का विरोध किया। उनके विचार में विश्व हमेशा से ऐसा ही था जैसा कि उस समय था और वह हमेशा वैसा ही रहेगा। क्योंकि उसका ऐसा रहना ही तर्कसंगत है। इस विश्व में हर वस्तु, चाहे वह विकासवृक्ष के निम्न स्तर में स्थित मछली हो अथवा यूनानी नगर का दास, हर कोई अपना स्थान जानता था और अधिकांशतः उसी स्थान पर रहता था। इस व्यवस्था में जड़ वस्तुएँ केवल उसी समय गति में आती हैं जब वे अपने स्थान से हटाई जाती है और पूर्वनिर्दिष्ट व्यवस्था में अपने मूल स्थान को लौटना चाहती हैं। उदाहरण के रूप में पत्थर को ऊपर हवा में फेंकने पर हमेशा ही वह धरती की ओर आ जाता है। अग्नि की लपटें स्वर्ग की अग्नि से मिलने ऊपर की ओर जाती हैं। जीवधारी इसलिए गतिमान होते हैं क्योंकि ऐसा करना उनकी प्रकृति है। इस प्रकार हवा में उड़ना पक्षियों का और पानी में तैरना मछलियों का स्वभाव है। इसी प्रकार उन्होंने प्रकृति में विद्यमान सब गतियों को पूर्वनिर्दिष्ट कारणों के आधार पर समझाने के प्रयत्न किये थे।

चित्र 3.10 अरस्तु ने अपना सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिगत वैज्ञानिक कार्य जीवविज्ञान के क्षेत्र में किया। उन्होंने कुछ समुद्री जीवों, मधुमक्खियों और उनसे संबंधित बीमारियों का गहराई से अध्ययन किया।

अरस्तू ने कभी भी किसी से कोई ऐसी बात नहीं की जिस पर उसे पहले से ही विश्वास न हो। उन्होंने समझाया था कि दुनिया वैसी ही है जैसी कि वे उसे जानते हैं। जब तक दुनिया एक जैसी

ही रहती अरस्तू के सिद्धांत सही माने जाते। परन्तु जैसा कि हम देखेंगे विश्व एक जैसा नहीं रहा और लोगों ने अरस्तू के सिद्धांतों को चुनौती दी, यद्यपि ऐसा होने में लगभग 2000 वर्ष का काफ़ी लंबा समय लगा।

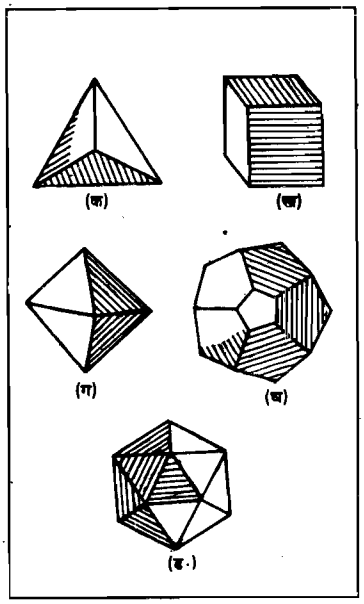

चित्र 3.11 ग्रीक द्वारा अध्ययन किये गये पाँच समफल के ज्यामितीय ठोस:
(क) चतुष्फलक, (ख) घन, (ग) अष्टफलक, (घ) विंशफलक, (ङ) द्वादशफलक। इन सभी ठोस पदार्थों में फलक का क्षेत्रफल और आकार समान था। इन सभी आविष्कारों का श्रेय ग्रीक गणितज्ञ और दार्शनिक पायथागोरस को जाता है।

3.3.1 विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में कुछ प्रगति

अब हम संक्षेप में यूनानी विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में हुई मुख्य प्रगति की चर्चा करेंगे।

ज्यामिति और खगोलविज्ञान

पूर्ण आकारों और अनुपातों को दर्शाने की आवश्यकता ने पाइथागोरस (582-500 वर्ष ईसा पूर्व) और किओस के हिप्पोक्रेटीज (लगभग 450 वर्ष ईसा पूर्व) को ज्यामिति करने के लिए प्रेरित किया (चित्र 3.11)।

हिप्पोक्रेटीज़ ने स्वयं वृत्त का वर्ग तैयार करने और घन को दुगुना करने आदि समस्याओं को हल करने के प्रयत्न किये जिनका लंबे समय से उत्तर नहीं मिल रहा था। वे दोनों समस्याओं को हल नहीं कर सके पर उन्होंने वक्रों की ज्यामिति के द्वार खोल दिये। यूडोक्सस (408-355 ईसा पूर्व) सबसे महान यूनानी गणितज्ञ थे। उन्होंने ऐसे संकेंद्रित गोलों (concentric spheres) के सेटों (समुच्चयों) द्वारा, जिनमें प्रत्येक की दूरी गोले के बाहर एक ही धुरी में निहित थी, सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की गति समझाने के प्रयत्न किये (चित्र 3.12)। उनका मॉडल बहुत सरल और अपक्व था जिससे उस समय तक ज्ञात तथ्यों को समझाया नहीं जा सकता था। परंतु मॉडल पर आधारित वास्तविक धातु के गोलों ने लंबे समय तक अधिकांश खगोलीय उपकरणों का आधार प्रदान किया है।

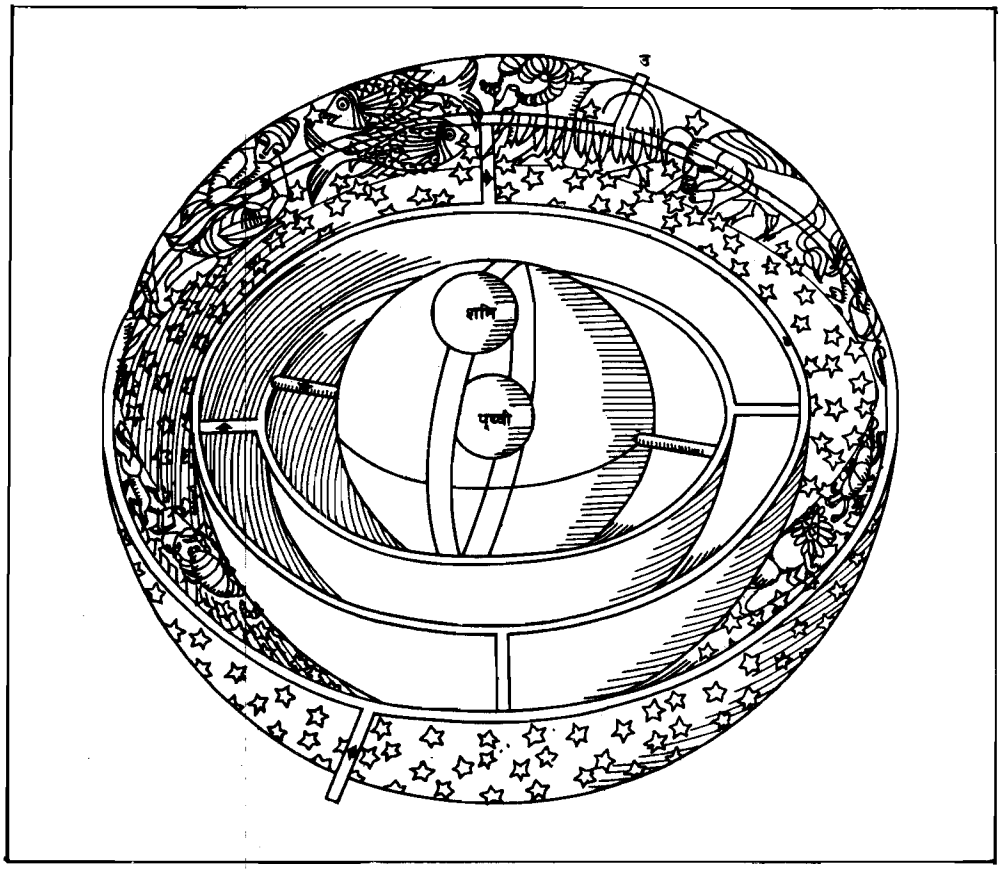

चित्र 3.12 ग्रहों की गति की व्याख्या करने के लिए यूडोक्लस का गोलों के अन्दर गोलों का आंशिक प्रतिरूप। इस बात पर विश्वास करते हुए कि ग्रह पृथ्वी के चारों ओर वृत्त में चक्कर लगाते हैं, यूडोक्लस ने पृथ्वी के चारों ओर 27 समकेन्द्रीय गोले खींचे। प्रत्येक गोला अपने ग्रह समेत एक भिन्न धुरी पर घूमता है। चित्र में तीर के निशान गोलों के चक्कर को दर्शाते हैं।

लगभग 300-200 वर्ष ईसा पूर्व में ज्यामिति की परंपरा, जो एथेंस की अकादमियों और विद्यालयों के विद्वत्तापूर्ण वातावरण में पनपती थी, सिकंदरिया के संग्रहालय में जा पहुँची। यूडोक्सस की ज्यामिति में परगा के एपोलोनियस (लगभग 220 वर्ष ईसा पूर्व) ने विस्तार किया। उन्होंने शंकु

परिच्छेद जैसे दीर्घवृत, पैराबोला और हाइपरबोला पर अनुसंधान किये (देखें चित्र 3.13)। गणित के पूर्वज्ञान के बड़े अंश को एकत्रित करके यूक्लिड (लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व) ने स्वयंसिद्धियों (axioms) से निगमन के आधार पर ज्यामिति की नींव डाली जो आज भी स्कूलों में पढ़ाई जाती है।

सिकंदरिया का संग्रहालय पश्चिम में पहला संस्थान था जिसे राज्य का समर्थन प्राप्त था। इसमें खगोलविज्ञान, प्रकाशविज्ञान, यांत्रिकी और गणित की प्रगति हुई। अगले 2000 वर्षों में इनमें कोई खास प्रगति नहीं हुई।

खगोल विज्ञान का संबंध सिद्धांत और प्रयोग दोनों से था। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार, खगोल विज्ञान आकाश में एक आदर्श विश्व का अध्ययन था और इस आदर्श स्थिति से जो विचलन दिखाई देते थे उन्हें छोड़ा जा सकता था। दूसरी ओर तारों और ग्रहों की स्थिति ज्ञात करना भी महत्वपूर्ण था। परिणामस्वरूप यूनानी खगोलशास्त्रियों ने प्रेक्षणों से प्राप्त परिणामों के अनुसार जटिल मॉडलों का आविष्कार किया। ये मॉडल एक आदर्श, सरल और सुंदर संसार की कल्पना को भी दर्शाते थे। खगोल विज्ञान के गणितीय आधार यूक्लिड के गोले थे। पर वास्तविक ग्रहों की गति को जानने के लिए हिप्पारकस (190-120 वर्ष ईसा पूर्व) ने एक चपटे मॉडल को अपनाया था। यह 'पहिये के अंदर पहियो' का मॉडल था। उन्होंने खगोल विज्ञानिक उपकरणों का भी अविष्कार किया जिनमें से अधिकांश अगले 2000 वर्षों तक इस्तेमाल होते रहे।

इसके दो सौ वर्ष बाद टॉलमी (सन् 90-168 ईस्वी) ने एक ऐसा मॉडल तैयार किया जिसमें पृथ्वी केंद्र में स्थित थी और सूर्य, चंद्रमा तथा अन्य ग्रह उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे। यही यूरोप में नवजागरण (रेनांसा) युग तक मानक खगोल विज्ञान माना जाता रहा। इसके साथ ही सेमोस के अरिस्टार्कस (310-230 ईसा पूर्व) तथा अन्य लोगों ने सौर-मंडल का एक विकल्प मॉडल भी प्रस्तुत किया। इसमें सूर्य केंद्र में था तथा पृथ्वी और अन्य ग्रह इसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे। पर इसे उस समय स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि इसे दर्शनशास्त्र की दृष्टि से असंगत और दैनिक अनुभव के विपरीत माना गया। परंतु इस मॉडल को अरबों ने आगे बढ़ाया, कोपरनिकस (1473-1543) ने पुनः जीवित किया और अंत में गैलीलियो (1564-1642), केपलर (1571-1630) और न्यूटन (1642-1727) ने ठीक पाया। आप इसके बारे में इकाई 6, 9 और 10 में विस्तार से पढ़ेंगे।

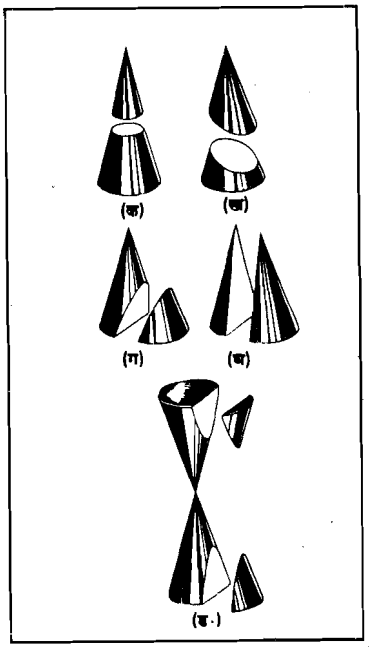

चित्र 3.13 अपोलोनियस द्वारा विभाजित शंकु (क) शंकु को आधार के समानांतर काटने पर एक वृत्त बनता है, (ख) शंकु को तिरछा काटने पर दीर्घवृत्त बनता है, (ग) शंकु पर बनी सीधी रेखा को समानांतर काटने पर परवलय बनता है। (घ) यदि शीर्ष बिंदु से काटा जाए तो एक दूसरे को काटती हुई दो रेखाएं बनती हैं, (ङ) यदि शंकु और उसके प्रतिबिंब को काटा जाए तो अतिपरवलय बनता है।

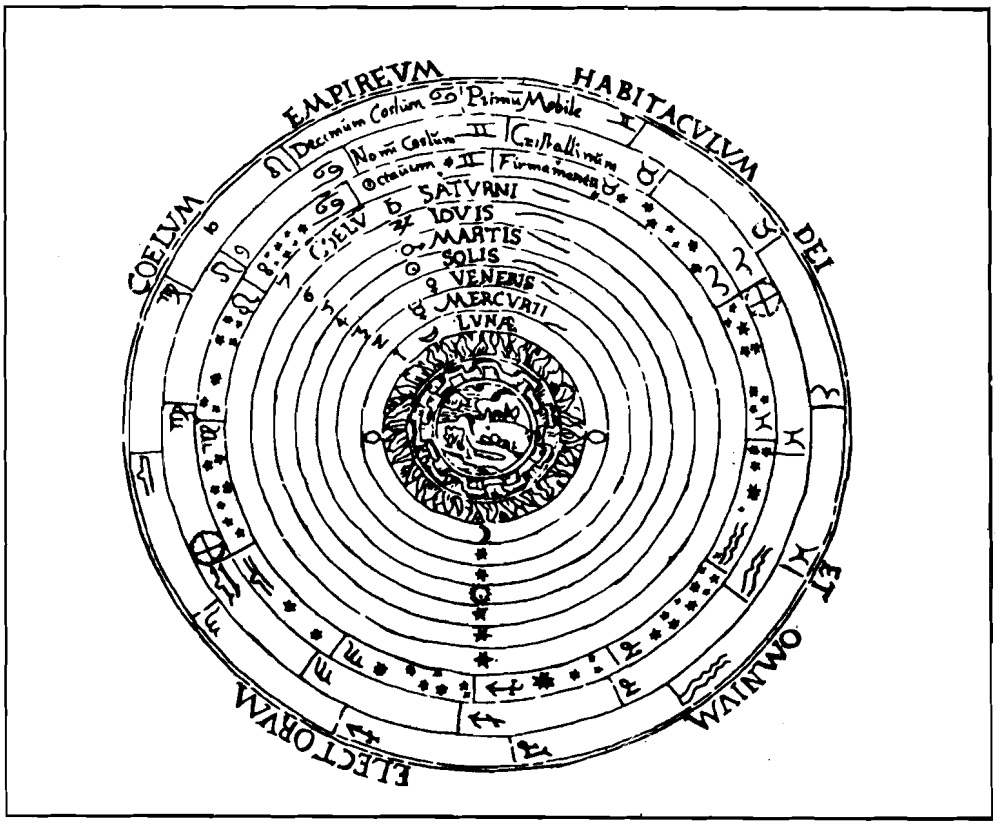

चित्र 3.14 टॉलमी का पृथ्वी केन्द्रित ब्रह्मांड का मॉडल। चार तत्वों धरती, वायु, अग्नि और पानी सहित पृथ्वी को केन्द्र में दिखाया गया है। इन तत्वों के ऊपर पारलौकिक चीज़ें जैसे चंद्रमा, बुद्ध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि स्थित हैं। इसके बाद अचल तारों का समूह आता है, उसके बाद परमात्मा द्वारा संचालित नवें और दसवें गोलों का प्रभाव क्षेत्र है और जिससे अन्य गोले अपनी गति प्राप्त करते हैं। इसके बाद ईश्वरीय निवास स्थान है।

यांत्रिकी

विज्ञान की एक अन्य शाखा, जिसमें यूनानी सभ्यता ने सर्वाधिक योगदान दिया वह है यांत्रिकी। यांत्रिकी का विकास, सिंचाई करने, भारी वस्तुओं को लाने-ले जाने, जलयान बनाने और सैनिक उपकरण बनाने की आवश्यकताओं से हुआ। जब सिकंदर की फौजें मध्य पूर्वी देशों के दस्तकारों के संपर्क में आईं तब अनेक आविष्कारों जैसे घिरनी, बेलन-चरखा और पेंच (स्क्रू) आदि का उपयोग किया जाने लगा। साथ ही उनमें सुधार होने लगा। आर्कीमिडीज़ (287-212 ई.पू.) ने यंत्र बनाने की इस प्रक्रिया को अपने बलों के सिद्धांत तथा तैरती हुई वस्तुओं और द्रव स्थिति विज्ञान के अध्ययनों से बहुत योग दिया। इस सिद्धांत के अनुसार किसी पदार्थ को स्थिर अवस्था में रखने के लिए उस पर लगने वाले बलों का संतुलित रहना ज़रूरी है।

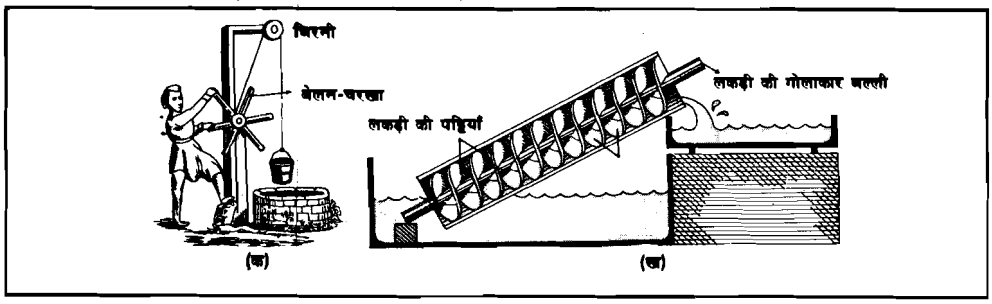

चित्र 3.15 ग्रीस में इस्तेमाल किये गये कुछ यंत्रः (क) कुएं से पानी निकालने के लिए बेलन चरखा और घिरनी। (ख) आर्किमिडीज द्वारा बनाये गये पानी खींचने वाले पेंच का तिरछा भाग जिसका उपयोग सिंचाई में किया जाता था। एक लकड़ी के गोल डंडे के किनारे पर लकड़ी की पट्टियाँ कुंडली के आकार में फिट की जाती थीं। इसे तब लकड़ी के तख्ते में फ़िट कर दिया जाता था। पानी में डालकर इसे घुमाने से पानी कुंडली पर चढ़ता हुआ तेज़ी से बाहर निकलता था।

चिकित्सा विज्ञान

एक अन्य क्षेत्र जहाँ यूनान में हुई प्रगति भारत के बराबर थी, वह था चिकित्सा विज्ञान। हालाँकि इसकी प्रगति में दोनों देशों में दो विपरीत स्रोतों से प्रोत्साहन मिला था। भारत में चरक और सुश्रुत के शिष्य परिव्राजक चिकित्सक थे जो गाँव-गाँव घूमकर सामान्य नागरिकों का उपचार करते थे और लोकतांत्रिक विचारधारा फैलाते थे। दूसरी ओर, यूनान में चिकित्साशास्त्री अपनी प्राचीन परंपराओं को इसलिए आगे बढ़ा सके क्योंकि उन्हें अभिजात्य वर्ग का समर्थन प्राप्त था। इस युग में यूनानी समाज का उन्नति के शिखर पर पहुँचने के बाद पतन शुरू हो चुका था। भोग-विलास और हर चीज़ की अधिकता के कारण वहाँ का धनी वर्ग अस्वस्थ जीवन बिताने पर बाध्य हो चुका था। इसलिये वह चिकित्सकों पर पूरी तरह निर्भर हो गया। सिकंदरिया के संग्रहालय ने शरीर रचना और शरीर क्रियाविज्ञान में अनुसंधान को बढ़ाने में बहुत मदद की।

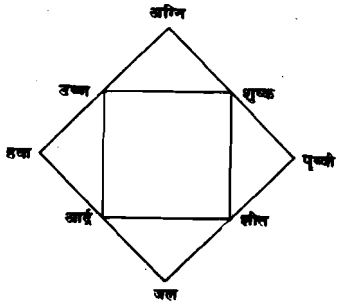

चित्र 3.16 ग्रीक के विचारक एम्पिडोक्लिस द्वारा बनाये गये चार तत्व। एम्पिडोक्लिस के अनुसार "मूल भूत पदार्थ" का विभिन्न वस्तुओं में बदल जाना इस बात पर निर्भर है कि कौन-सा मुख्य गुण उसे प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए मूलभूत पदार्थ में मूल गुणों-शीतल और शुष्क के मेल से पृथ्वी बनेगी, शीत और आर्द्र मिलने पर जल बनेगा, उष्ण और शुष्क मिलने पर अग्नि बनेगी, ऊष्ण और आर्द्र मिलकर वायु बनेगी।

कोस के हिप्पोक्रेटीज़ यूनानी चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व व्यक्ति थे। उनके ग्रंथों में (जिनकी रचना 450 से 350 ईसा पूर्व के बीच हुई थी) अनेक रोगों के लक्षण दिये गये हैं, ये लक्षण सावधानी से किये गये प्रेक्षणों पर आधारित हैं। इनमें रोगों के जादुई अथवा धार्मिक कारणों और उपचारों का वर्णन नहीं है। परंतु चिकित्सा विज्ञान के बारे में हिप्पोक्रेटिज़ के मूल मत के प्रभाव को 'चार दोषों के सिद्धांत' ने कम कर दिया। इस सिद्धांत को सबसे पहले आयोना के दार्शनिक एंपेडोक्लीज़ ने प्रस्तुत किया था (चित्र 3.16)। उनकी विचारधारा चिकित्सा विज्ञान के सिद्धांतों और पेशे के लिये अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुई।

उस समय के एक महान् चिकित्सक हेरोफिलस (लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व) प्रेक्षण और प्रयोगों में विश्वास रखते थे। तंत्रिकाओं की कार्य प्रणाली समझने वाले ये पहले व्यक्ति थे। उन्होंने संवेदी (sensory) और प्रेरक तंत्रिकाओं (motor) में भेद किया और नाड़ी देखकर रोग के लक्षणों का अनुमान लगाते थे। इरासिसट्रेटिक्स (लगभग 280 वर्ष ईसा पूर्व) उनसे भी आगे बढ़ गये थे। उन्होंने मानव मस्तिष्क की विशिष्ट संरचना के महत्व का पता लगाया। दुर्भाग्य से इस काल के अधिकांश महत्वपूर्ण मूल ग्रंथ खो गये हैं। परंतु इनकी महत्वपूर्ण खोजों का सार गालेन (130-200 ईस्वी) ने ढूंढ निकाला और उसमें वृद्धि भी की। गालेन अरबी और मध्ययुगीन चिकित्सा विज्ञान के संस्थापक थे और इस क्षेत्र में उनका उतना ही सम्मान था जितना अरस्तू का। उन्होंने अपने अध्ययनों के लिए जानवरों की चीरफाड़ की और उससे शरीर रचना के बारे में बहुत ज्ञान प्राप्त किया। गालेन द्वारा दिया गया शरीर क्रिया विज्ञान जिसमें धमनियों और शिराओं में बहते रक्त के ज्वार-भाटे और जीवात्माओं का प्रवाह, शरीर को उष्मा प्रदान करने वाला हृदय, पंखों की तरह शरीर को ठंडक पहुँचाने वाले फेफड़े आदि हैं, मानव शरीर का चित्रण व्यापक रूप से करते तो अवश्य हैं पर वास्तविक नहीं है। जहाँ तक शारीरिक क्रियाओं को समझाने का प्रश्न

था गालेन भी तीन भाव और आत्माओं के प्राचीन सिद्धांत से ऊपर नहीं नहीं उठ पाये। इस सिद्धांत के कारण अपने शरीर के बारे में जानने के मुनष्य के प्रयासों में अगले 1500 वर्षों तक विशेष प्रगति नहीं हो पायी।

बोध प्रश्न 4

यूनानी विज्ञान का विकास यह दर्शाता है कि वह सदैव दो विचारधाराओं से प्रभावित होता रहा है। पहली विचारधारा में वास्तविक प्रेक्षणों को समझने का प्रयत्न किया जाता था जबकि दूसरी में आदर्श संसार की कल्पना को सही सिद्ध करने के लिए सिद्धांत और मॉडल खोजे जाते थे। निम्नलिखित तालिका में दो कॉलम हैं। कॉलम 2 में यूनानी विज्ञान के विकास के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे दिये जा रहे हैं। उन्हें कॉलम 1 में दी गयी विचारधारा के अनुसार व्यवस्थित कीजिए।

	कॉलम 1		**कॉलम 2**
क)	अरस्तू के आदर्शों तथा संतुलित और सुंदर विश्व के दृष्टिकोण पर आधारित विकास	i)	तैरती हुई वस्तुओं का अध्ययन, घिरनी का आविष्कार, पानी उठाने वाली पेंच (स्क्रू) आदि।
		ii)	ब्रह्मांड का ऐसा मॉडल जिसमें पृथ्वी केंद्र में हो।
		iii)	नियमित सममित ठोसों और ज्यामितीय वक्रों का अध्ययन।
ख)	परिवर्तनशील विश्व के वास्तविक प्रेक्षणों पर आधारित विकास	iv)	रोगों के लाक्षणिक विवरण, तंत्रिकाओं की क्रियाविधि का अध्ययन, जानवरों की चीरफाड़ आदि।
		v)	प्रकृति के चार तत्वों के आधार पर शरीर के चार रसों का सिद्धांत।
		vi)	प्रकृति में परिपूर्ण वृत्तों और गोलों के अतिरिक्त किसी अन्य आकृति की उपस्थिति मानने से इनकार करना। इस सिद्धांत के फलस्वरूप ही ग्रहों की गति को समझाने के लिए संकेंद्री गोलों वाला मॉडल तैयार किया गया।
		vii)	समुद्री जीव जंतुओं और मधुमक्खियों तथा उनके रोगों का अध्ययन।
		viii)	विश्व हमेशा से ही ऐसा था जैसा अब है और ऐसा ही रहेगा।

अब तक हमने यूनानी विज्ञान के विविध क्षेत्रों तथा ज्यामिति, खगोलविज्ञान, यांत्रिकी और चिकित्सा विज्ञान में हुई प्रगति का वर्णन किया। एक अन्य क्षेत्र जिसने दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया, वह था पदार्थ की प्रकृति। ब्रह्मांड में द्रव्य की स्थिति के बारे में भारतीय और यूनानी विद्वानों के सिद्धांत समानांतर थे। अब हम इनमें से कुछ सिद्धांतों की चर्चा करेंगे। हो सकता है कि यह सिद्धांत आपको कुछ विचित्र लगे। हम यह भी जानते हैं कि ये अब बिल्कुल मान्य नहीं हैं। परंतु वे हमारे पूर्वजों की अपने आसपास के संसार के बारे में जिज्ञासा और उसे समझने के प्रयासों को दर्शाते हैं।

3.4 प्राचीन काल में परमाणु सिद्धांत

सांख्य दर्शन भारत का सबसे पुराना दर्शन है। इसकी पद्धति मानती थी कि चेतना के अतिरिक्त हर वस्तु आदि द्रव्य से विकसित हुई है। इस पद्धति के अनुसार चेतना, जड़ द्रव्य और ऊर्जा एक दूसरे पर निर्भर और आपस में संबंधित अस्तित्व के तीन रूप हैं। विकास की प्रक्रिया में न तो

द्रव्य का निर्माण हुआ है और न विनाश, तथा द्रव्य, ऊर्जा और चेतना तीनों का कुल योग हमेशा एक ही रहता है। द्रव्य और ऊर्जा के पुनः वितरण से ही पार्थिव संसार में भिन्नता आयी और पेड़-पौधे तथा जीव जन्तु बने। द्रव्य में हमारी पाँच इंद्रियों के अनुरूप पाँच पहचाने जा सकने वाले गुण होते हैं—गंध, स्वर, स्पर्श, रंग और ध्वनि। द्रव्य के पाँच रूप होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

इसी सिद्धांत के समानांतर, पर इससे काफ़ी बाद, लगभग 600 ई.पू. में, यूनान में थेल्स और अन्य विद्वानों ने पार्थिव ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धांत को विकसित किया। थेल्स ने यह विचार दिया था कि प्रत्येक वस्तु मूलतः पानी से उत्पन्न हुई है। उसके बाद पृथ्वी, वायु और जीवधारी पृथक-पृथक हो गये। पृथ्वी, वायु, कुहरा और अग्नि, ये चार तत्व बने जिनसे मिलकर अन्य पदार्थ बनते हैं। इन तत्त्वों को सांख्य दर्शन के अनुसार दो परस्पर विरोधी कार्य करने पड़े। एक ओर तो वे वास्तविक वस्तुओं के प्रतीक थे जैसे पवन, बाढ़, तूफ़ान आदि और दूसरी ओर वे उष्ण, शीत, आर्द्र, शुष्क, हल्के, भारी आदि गुणों के भी प्रतीक थे।

सांख्य दर्शन और यूनानी विचारधारा ने ब्रह्मांड के निर्माण की और घटनाओं के घटने की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की जिसमें देवताओं का दख़ल नहीं था और न ही कोई पहले से निश्चित योजना थी। इन विचारधाराओं की कमज़ोरियाँ थीं उनकी अस्पष्टता और शुद्ध वर्णनात्मक प्रकृति। ये विचारधाराएँ अपने आप में किसी निश्चित लक्ष्य पर नहीं पहुँचती थीं। उनसे कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता था और उनका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं था। परंतु अपनी सब कमज़ोरियों के बावजूद ये विचारधाराएँ मनुष्य की, स्वयं अपने उद्गम के बारे में और ब्रह्मांड के बारे में सोचने का पहला प्रयास थीं। द्रव्य की प्रकृति को समझने की एक अत्यंत भिन्न विधि थी—परमाणुओं की कल्पना। परमाणुओं को सब दृश्य पदार्थों की मूल इकाई समझा जाता था। उनके विशिष्ट संयोजन ही पदार्थों को भिन्न-भिन्न गुण प्रदान करते थे।

भारतीय वैशेषिक पद्धति में, जिसके प्रतिपादक प्रसिद्ध विद्वान कणाद (लगभग 600 ई.पू.) थे, लघुतम कणों को आकारहीन गणितीय बिंदु मानते थे। इन बिन्दुओं में चार तत्त्वों —पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के संभावित गुण विद्यमान समझे जाते थे। इनके आधार पर उन्हें चार वर्गों में बाँटा गया था। एक ही वर्ग के कम से कम छह परमाणुओं के संयोजन से, जिनके बीच का स्थान रिक्त होता था, जटिल परमाणु बनते थे। ये जटिल परमाणु रासायनिक तत्त्व के अनुरूप होते थे।

विभिन्न विजातीय परमाणुओं की संयोजन समस्याओं को जैनों ने हल किया। जैनों का मत था कि जब दो विजातीय परमाणु मिलते हैं तो एक नये पदार्थ का जन्म होता है। संयोजन की क्रियाविधि पारस्परिक आर्कषण समझी जाती थी। धनात्मक और ऋणात्मक परमाणु परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करते थे। यौगिकों के गुणों में सब प्रकार के परिवर्तनों को उनके पारस्परिक आकर्षण के आधार पर समझाया जाता था।

यद्यपि उपर्युक्त दर्शन पद्धतियाँ उच्च बौद्धिक क्रियाकलापों की प्रतीक थीं पर उनकी सीमाएँ उनकी अमूर्तता में निहित थीं। दार्शनिकों को दो विरोधी विचारों को अपने सिद्धांतों में शामिल कर लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी। उदाहरण के तौर पर अपने ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धांत में उन्होंने वे तथ्य भी शामिल कर लिये थे जो उन्होंने पार्थिव वस्तुओं के प्रेक्षण के बाद ढूंढे थे। इसके साथ ही उस सिद्धांत में धार्मिक ग्रन्थों से ज्ञात बातें और ऐसी बातें भी थीं जिनका कोई पार्थिव आधार नहीं था। इस प्रकार जैनों ने अपने भौतिकवादी सिद्धांत में कर्म और आत्मा को शामिल कर लिया था। वैशेषिक पद्धति को अपनाने वालों ने यह पेशकश की थी कि परमाणु की गति का कारण 'अदृष्ट' (पूर्व जन्म के कर्म) हैं।

मज़े की बात यह है कि यूनानी परमाणुशास्त्री आत्मा, अदृष्ट, कर्म की विचारधारा से मुक्त थे। डेमोक्रिटस (लगभग 420 वर्ष ई.पू.) ने यह कल्पना की थी कि ब्रह्मांड का निर्माण शून्य आकाश में विचरण करने वाले असंख्य अविभाज्य कणों से हुआ है (चित्र 3.17)। ये कण अपरिवर्तनशील हैं। वे अनेक ज्यामितीय आकारों के माने जाते थे जिससे उनमें संसार की भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्माण करने की क्षमता थी। उनकी गति के फलस्वरूप ही सब दृश्य-परिवर्तन होते थे।

इस परमाणु सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड चिरस्थायी नहीं था। वह एक गतिशील ब्रह्मांड का चित्र प्रस्तुत करता था जिसमें वस्तुएँ स्थायी नहीं थीं वरन् सदैव गतिशील रहती थीं। इस अर्थ में वह धर्म विरोधी था क्योंकि वह प्लेटो और अरस्तू की भली-भाँति स्थापित विचारधाराओं को चुनौती देता था।

हम यूनानी या भारतीय परमाणु सिद्धांत को उसकी विद्धत्ता के बावजूद भी वैज्ञानिक विचारधारा के अंश नहीं मान सकते थे। उससे कोई भी ऐसा निष्कर्ष नहीं निकल सकता था जिसे प्रयोगों से सिद्ध किया जा सके। परन्तु हम इस बात से भी इंकार नहीं कर सकते हैं कि यूनानी परमाणु सिद्धांतों में निहित भौतिकवाद और तर्क ने गैसेन्डी (1592-1655), न्यूटन (1642-1727) और उनके माध्यम से डाल्टन (1766-1844) के परमाणु सिद्धांतों को 2000 वर्ष बाद, अवश्य प्रभावित किया था।

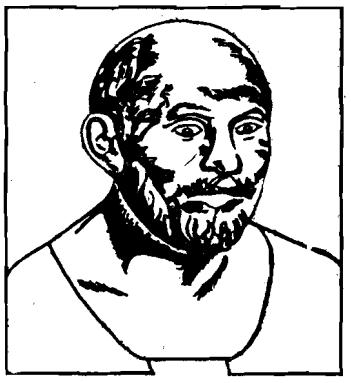

चित्र 3.17 डेमोक्रिटस

बोध प्रश्न 5

नीचे दी गयी तालिका में हमने एक ओर लौह युगीन यूनान के विज्ञान और समाज के कुछ गुण दिये है और दूसरी ओर उसी युग के भारतीय विज्ञान और समाज के गुण। दोनों ओर हमने कुछ स्थान रिक्त छोड़ दिये हैं, जिन्हें आपको भरना है। हमने उदाहरण के तौर पर पहला स्थान भर दिया है।

	यूनानी विज्ञान	भारतीय विज्ञान
क)	यूनानी समाज सामंतों, किसानों, दस्तकारों, व्यापारियों और दासों में बंटा हुआ था।	भारत में वर्ण-व्यवस्था का उदय हो रहा था। वर्ण चार थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।
ख)	.....	विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अधिकांश कार्य तत्कालीन भारत के दर्शन और विचारधारा से मुक्त थे यद्यपि हर ग्रंथ देवत्व के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन से आरंभ होता था। विज्ञान ने प्रयोग और प्रेक्षण से अपना संपर्क बनाये रखा था और वह मात्र कल्पना पर बहुत कम निर्भर था।
ग)	यूनानी चिकित्सा विज्ञान मुख्य रूप से इसीलिए फला-फूला क्योंकि उसे अभिजात्य वर्ग का समर्थन प्राप्त था।	.....
घ)	यूनानी ब्रह्मांडोत्पत्ति सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड चार तत्वों–वायु, अग्नि, धुंध और पृथ्वी से बना है।	.....
ङ)	.....	भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों ने द्रव्य और गति के अपने सिद्धांतों में आत्मा, कर्म अथवा अदृष्ट को भी शामिल कर लिया था।

3.5 यूरोपीय विज्ञान का पतन

ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य तक यूनानी राज्य अराजकता और रोमन साम्राज्य के अधिक प्रबल होने के कारण बिखरने लगा था। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में इटली अच्छे जलवायु और बढ़ती हुई स्वस्थ आबादी वाला कृषि प्रधान देश था। ईसा पूर्व पहली शताब्दी तक जन समर्थन से रोमनों ने अपने आपको शक्तिशाली सैनिक तानाशाही में बदल लिया था। इटली की सेनाओं ने भूमध्य सागर के पूर्व और पश्चिम में स्थित देशों को ही नहीं वरन् ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी और ऑस्ट्रिया को भी जीत लिया था (चित्र 3.18)। यद्यपि रोम में सेना सबसे अधिक शक्तिशाली हो गयी थी पर शासन धनी व्यापारी वर्ग और गुलामों के मालिकों के हाथ में था। साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधने वाली शक्ति सेना थी। सम्राट उसका उपयोग कर वसूलने में करते थे जिससे सैनिक विद्रोह न कर सकें और दूसरा सम्राट चुनने की धमकी न दे सकें। देश की सर्वोतम भूमि पर धनवानों का कब्ज़ा था जिसपर वह अपने गुलामों से खेती करवाते थे जबकि घटिया धरती नीचे के स्तर के लोगों के लिए अथवा मुक्त किये गये गुलामों के लिए छोड़ दी जाती थी।

रोमन साम्राज्य की आय के मुख्य स्रोत थे साम्राज्य के विभिन्न भागों से सेना द्वारा लूटा गया धन और गुलामों द्वारा की जाने वाली खेती। इस अवस्था में यह सोचना आश्चर्यजनक नहीं है कि उत्पादन बढ़ाने और नयी तकनीकों के उपयोग से अर्थव्यवस्था सुधारने की माँग बहुत कम थी। इस प्रकार रोमन साम्राज्य ने जो ईसा के बाद दूसरी शताब्दी के मध्य तक कायम रहा, विज्ञान और कलाओं

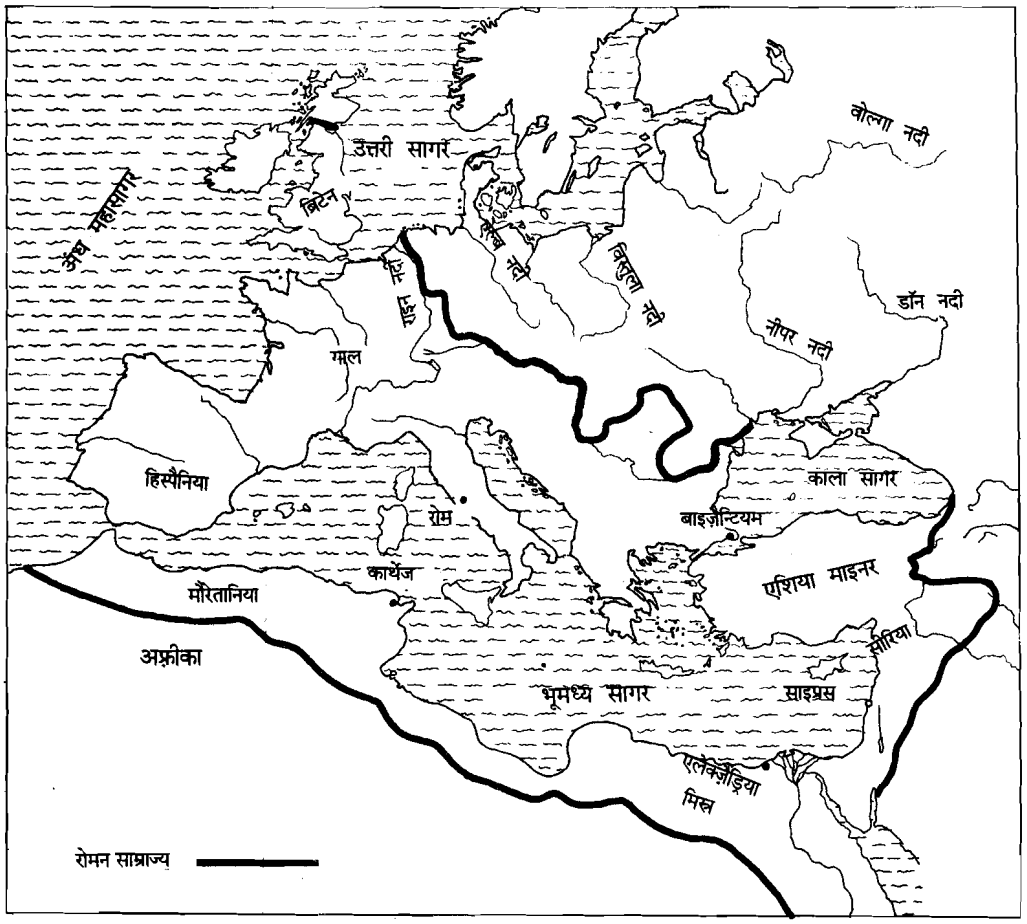

चित्र 3.18 दूसरी सदी ईसवीं में रोमन साम्राज्य।

के रूप में संस्कृति में बहुत कम योग दिया है। यद्यपि रोमन युग में न तो तकनीकी में सुधार हुआ था और न ही विज्ञान के विकास में, तथापि मौजूदा ज्ञान का इस्तेमाल सैनिक और गैर-सैनिक उपयोगों के लिए भवनों के निर्माण में किया जाता था। पकायी गई ईंटों और ज्वालामुखी की राख तथा चूने से बनी सीमेंट का इस्तेमाल सड़कों, बदरगाहों, नहरों, स्नानागारों और नाटकघरों के निर्माण में किया जाता था (चित्र 3.19)।

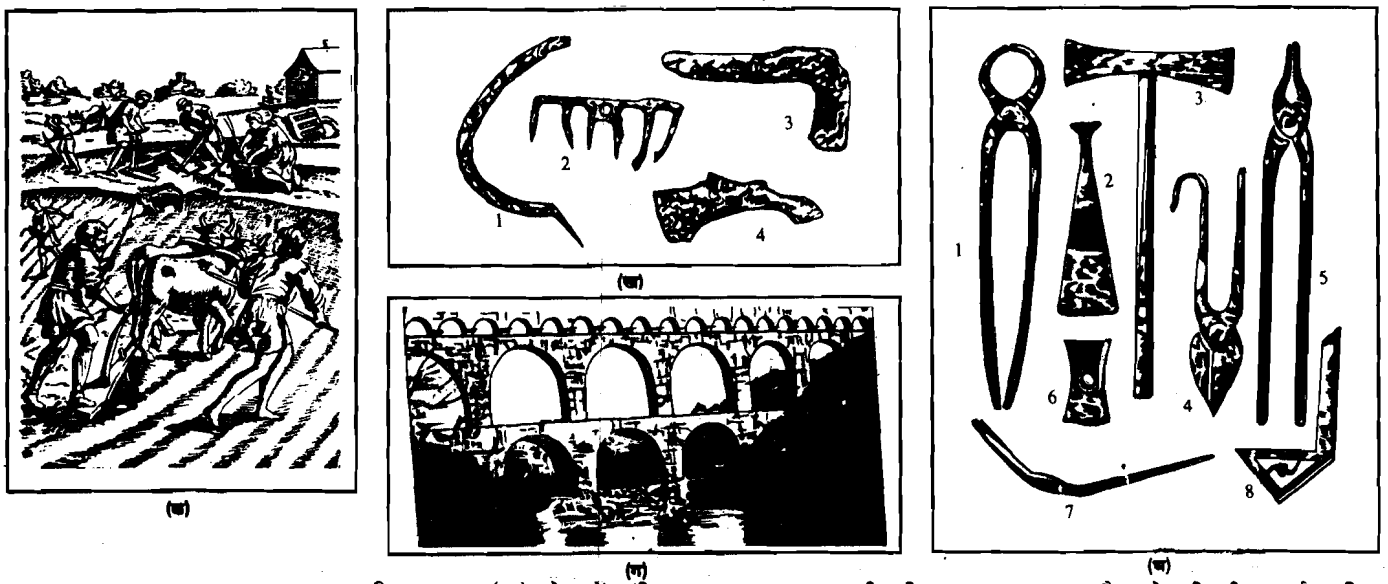

(क) (ख) (ग) (घ)

चित्र 3.19 (क) रोम में कृषि। हल चलाना, लकड़ी चीरना, हल बनाना और टोकरी की बुनाई आदि क्रिया-कलापों पर ध्यान दीजिए। पीछे रखे पटरे को भी देखिए।
(ख) कृषि के उपकरण।
(1) हँसिया, (2)पाँचा, (3) बगीचे का चाकू, (4) कुल्हाड़ी-फावड़ा।
(ग) रोमन साम्राज्य में हजारों किलोमीटर दूर तक पानी ले जाने के लिए चूने तथा ज्वालामुखी की राख से बने कंक्रीट और जली हुई ईंटों द्वारा निर्मित जलसेतु। पानी की नलियाँ सेतु के ऊपर से होकर जाती थी।
(घ) रोम के भवन निर्माण के औज़ार: 1,5) चिमटे, 2) गारा-मसाला फैलाने वाली करनी, 3,6) हथौड़ा और हथौड़े का सिरा, 4,7) काटने के औजार, 8) राज़गीर की गुनिया।

थोड़ से धनवान लोगों के हाथों में शक्ति और धन के संचय, उनकी क्रूरता आदि के परिणामस्वरूप गुलाम और भी ग़रीब हो गये। इससे उपभोक्ता वस्तुओं की मांग कम हो गयी । व्यापारियों और दस्तकारों की दशा और भी बिगड़ गयी। नयी तकनीकों के विकास के लिए समुचित प्रोत्साहन न मिलने से प्रकृति के क्रियाकलापों की खोज करने की प्रवृत्ति समाप्त हो गयी। रोमन साम्राज्य के बाद यूरोप में बंधुआ मज़दूरों वाली ज़मींदारी अर्थव्यवस्था का युग आया। इसमें संस्कृति गतिहीन हो गयी। यह गतिहीनता 15वीं शताब्दी तक रही। यूरोप में अंधकार का युग आ गया और विद्या तथा ज्ञान के केंद्र पूर्व की ओर चले गये। आपको जे.डी. बर्नाल की प्रसिद्ध पुस्तक "साईंस इन हिस्ट्री" (पृष्ठ 231) में से अग्रलिखित पंक्तियाँ पढ़ना रोचक लगेगा। इसमें यह दर्शाया गया है कि सामाजिक पतन किस प्रकार विज्ञान का पतन लाता है।

"अगर पहले नहीं तो तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक तो प्राचीन सभ्यता की (रोम, सभ्यता)अवनति होनी ही थी। विज्ञान के साथ त्रासदी यह हुई कि उसकी मृत्यु में इतना समय लगा क्योंकि उस युग में जो भी उपलब्धियाँ हुई थीं वे सब लुप्त हो चुकी थीं। ज्ञान का उपयोग आगे ज्ञान-अर्जन के लिए नहीं किया जाता है, तो वह नष्ट होकर लुप्त हो जाता है। आरंभ में पुस्तकें अलमारियों में ही पड़ी रहीं क्योंकि बहुत से लोगों को न तो उनको पढ़ने की ज़रूरत थी और न ही वे उन्हें पढ़ना चाहते थे। बाद में ऐसी स्थिति आ गयी कि कोई उन्हें समझ नहीं पाता था। अंत में वे बिना पढ़े ही नष्ट हो गयीं। जैसी कि सिकंदरिया के बृहत् पुस्तकालय की पुस्तकों के साथ हुआ। उसका बाकी बचा भाग जन-स्नानागारों में पानी गर्म करने के लिए जला दिया गया अथवा सैकड़ों अन्य तरीकों से नष्ट कर दिया गया।"

3.6 सारांश

इस इकाई में हमने लौह युग में (1500 ईसा पूर्व से लगभग 400 ईसा पूर्व) भारतीय और यूनानी सभ्यताओं में विज्ञान की प्रगति के बारे में पढ़ा। हमने देखा कि इस युग में, भारत और यूनान दोनों में, वर्गों में बँटे हुए समाज का उत्थान हुआ जिसने विज्ञान की प्रवृत्ति और विकास को प्रभावित किया। अब हम इसके कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं।

- भारत में कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज के फलस्वरूप गंगा के संपूर्ण कछार में सभ्यता का प्रचार हुआ। चरवाहे आर्य कबीलों को कृषक समाज के रूप में बस्तियाँ बसाने में लगभग 1000 वर्ष का समय लग गया। ये कबीले ऐसे सभ्य शहरी समाज के रूप में संगठित हो गये जो लड़ाइयों से अपेक्षाकृत मुक्त था। इन शहरी बस्तियों में आपसी व्यापार बढ़ा और वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन आरंभ हो गया। इन परिवर्तनों के साथ वर्ण व्यवस्था का भी उदय हुआ और यह व्यवस्था समय के साथ-साथ सुदृढ़ होती गयी। उसी समय के आसपास यूनान में गुलाम समाज का उदय हुआ।
- आरंभ में इस युग में दोनों सभ्यताओं ने खगोल विज्ञान, ज्यामिति, यांत्रिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान और चिकित्साविज्ञान जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की।
- कठोर वर्गों में विभाजित, सामाजिक ढाँचे में वे लोग जो अपने हाथों से काम करते थे, चिंतकों से अलग होते गये। सिद्धांत और व्यवहार के बीच अंतर बढ़ जाने से विज्ञान का विकास मंद पड़ गया। यूनान में इसने ब्रह्मांड और विश्व के बारे में एक आदर्शवादी दर्शन को जन्म दिया, जैसा कि अरस्तू की विचारधारा में परिलक्षित होता है। अगले 2000 वर्षों तक अरस्तू की विचारधारा न केवल यूनानी विज्ञान पर बल्कि विश्व विज्ञान पर भी छायी रही।
- भारत में चरक और सुश्रुत के शिष्यों द्वारा अपनाये गये उपचार व वैज्ञानिक तरीके इस समय के अपवाद थे। ये चिकित्सक गाँव-गाँव घूमकर अमीर और ग़रीब, दोनों का जाति और धर्म की परवाह किये बिना, इलाज करते थे। इसलिए भारत में चिकित्सा विज्ञान में त्रिदोषों और पंचभूतों के सिद्धांत के अतिरिक्त बहुत कम भ्रांतियां उत्पन्न हुई।
- ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य में यूनानी साम्राज्य का पतन और रोमन साम्राज्य का उत्थान हुआ। रोमन साम्राज्य की अर्थ व्यवस्था उसकी सेना द्वारा की गयी लूट-पाट और गुलामों द्वारा की गयी खेती पर निर्भर थी। उत्पादन बढ़ाने के लिए नये विचार ग्रहण करने और प्रचलित तकनीकों में सुधार करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं था। इसलिए रोमन काल में विज्ञान और संस्कृति का बहुत कम विकास हुआ। सांस्कृतिक गतिहीनता की यह अवस्था यूरोप में 15 वीं शताब्दी तक चलती रही।

3.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) लौह युग के रोमन चरण के दौरान प्रचलित ज्ञान का उपयोग सड़कें, नहरें, नाटकघर आदि बनाने के लिए किया गया। न तो प्रचलित तकनीकों में सुधार किया गया और न कोई नयी

विचारधारा विकसित हुई। धीरे-धीरे विज्ञान ने अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति खो दी। सामाजिक जीवन की किन विशेषताओं के कारण विज्ञान में यह गतिहीनता आई? दिये गये स्थान में अपना उत्तर लिखें।

.....

.....

.....

.....

2) पहली इकाई में आपने जिन संकल्पनाओं और विचारों का अध्ययन किया है, उनके उदाहरण इस इकाई में मौजूद हैं। निम्न कथनों में से प्रत्येक के लिये इस इकाई से उदाहरण दें।

क) व्यवहार (प्रयोग) को सिद्धांत से अलग करना विज्ञान के विकास में बाधक बन गया।

.....

.....

.....

ख) विज्ञान के सिद्धांतों पर समाज में व्याप्त सामान्य वातावरण के प्रभाव पड़े।

.....

.....

.....

ग) ऐसे नये सिद्धांत और व्यवहार जो प्रचलित सामाजिक विचारधाराओं या दर्शन के विरुद्ध हों, उसने टकराते हैं। वे धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं और पुनः किसी अन्य समाज में उदय होते हैं।

.....

.....

.....

घ) स्थायित्व से समाज में गतिहीनता आती है और समाज से विज्ञान में।

.....

.....

.....

3.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i) ल, (ii) क, (iii) क, (iv) ल, (v) ल,
   (vi) क, (vii) क, (viii) ल, (ix) क, (x) ल,
2) (क) असत्य, (ख) सत्य, (ग) सत्य, (घ) सत्य, (ङ) असत्य,
3) घ)
4) क) (ii), (iii), (v), (vi), (viii)
   ख) (i), (iv), (vii)
5) ख) यूनानी विज्ञान की प्रगति पर तत्कालीन सामाजिक दर्शन और विचारधाराओं के अत्यधिक प्रभाव पड़े।
   ग) भारत में चिकित्सकों ने साधारण ग्रामीणजनों का उपचार भी उसी प्रकार किया जैसा वे धनवानों का करते थे। उन्होंने दोनों को एक समान समझा।
   घ) भारतीय ब्रह्मांडोत्पत्ति सिद्धांत के पाँच तत्व थे– पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, और आकाश।

ड) यूनानी परमाणुशास्त्री आत्मा, अदृष्ट या कर्म के विचारों से मुक्त थे। उनका परमाणु सिद्धांत बदलते हुए विश्व का चित्र पेश करता है।

अंत में कुछ प्रश्न

1) क) रोमन अर्थव्यवस्था सेना द्वारा की गयी लूटपाट और गुलामों द्वारा की गयी खेती पर आधारित थी।

ख) शक्ति और धन कुछ लोगों के हाथों में ही इकट्ठे हो गए। अधिकांश नागरिक ग़रीब थे। इस प्रकार उत्पादन के बढ़ाने के लिए न तो विज्ञान को सुधारने और न नयी तकनीकें विकसित करने के लिए कोई प्रोत्साहन दिया गया।

2) क) भारत में परिश्रम और हाथ से किये जाने वाले काम निम्न जाति के किसान और दस्तकार तथा यूनान में गुलाम करते थे। उनमें और विचारकों के छोटे से समूह में जो विज्ञान के बारे में सोचते थे और जिन्हें राज्य का संरक्षण प्राप्त था, कोई संपर्क नहीं था। सिद्धांत और व्यवहार के बीच की इस खाई ने विज्ञान के विकास में बाधा उत्पन्न कर दी थी।

ख) भारत में चिकित्सा की आयुर्वेदिक पद्धति ने ब्रह्मांडोत्पत्ति की कल्पना के प्रभाव स्वरूप, त्रिदोषों और पंचभूतों की विचारधारा अपना ली थी। परमाणु सिद्धांत में भी 'आत्मा' 'कर्म' और 'अदृष्ट' का समावेश कर लिया गया। जैसा कि आप बोध प्रश्न 4 में देख चुके हैं, यूनान में आदर्श जगत के बारे में अरस्तू के दृष्टिकोण ने विज्ञान के अनेक क्षेत्रों को प्रभावित किया।

ग) चरक और सुश्रुत के शिष्यों का वैज्ञानिक व्यवहार भारतीय समाज के पुरोहितों के विचारों के विपरीत था। तीसरी या चौथी शताब्दी ईसवी तक रूढ़िवादी धार्मिक विचारों के विरोध तथा अन्य कारणों के फलस्वरूप आयुर्वेदिक पद्धति भी प्रेक्षण के स्थान पर जादुई कारणों पर अधिकाधिक आश्रित होने लगी। आजकल इसे पुनःवैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इसी प्रकार यूनान में सेमोस के एरिस्टार्कस ने ग्रहीय गतियों का सूर्य-केंद्रित सिद्धांत प्रस्तुत किया था। पर वह स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि वह प्रचलित दार्शनिक विचारधारा को ग़लत साबित करता था। उसे कोपरनिकस ने पुनः जीवित किया।

घ) रोमन साम्राज्य में विज्ञान की अवनति इस संकल्पना का उदाहरण है।